द्वितीय अध्याय

'बिनकरों का सामाजिक पक्ष'

अध्याय - 2

" निम्नवर्ग का सामाजिक पक्ष "

विषय - प्रवेश :-

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबन्ध "नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्ग का चित्रण" का मूल विषय निम्नवर्ग के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक एवं दार्शनिक पक्ष का अध्ययन करना हैं, जिसे उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में स्व-विचार वर्णन, परिस्थितियाँ, पात्रों के वार्तालाप एवं कार्यकलापों, अन्तर्द्वन्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। प्रमुख विषय का चिन्तन एवं गवेषण करने के पहले उसके मूल-तत्वोंका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है, जो प्रस्तुत अध्याय की आधार-शिला है। प्रस्तुत अध्याय में निम्नवर्ग के सामाजिक पक्ष का अध्ययन करना हैं, अतः समाज की परिभाषा, अर्थ एवं स्वरुप देखना यथोचित होगा।

समाजः अर्थ और स्वरुप :

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते वह आदिम काल से आज तक समूह बनाकर रहता आया है। बुध्दि और भाषा के वरदान से युक्त व्यवहार कुशल मानव ने अपना एकाकीपन त्यागकर पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन अपनाया, फलतः उसमें धीरे-धीरे सामाजिक भावना का विकास होता गया और इस विकासक्रम में समाज की स्थापना हुई है। समाज अपने सदस्यों को बाह्य खतरे से सुरक्षित रखता है, और व्यक्ति को सुविधापूर्वक जीवन-यापन के लिए सुविधा प्रदान करता हैं। साथ ही एक मर्यादा स्थापित कर व्यक्ति का नियमन भी करता है। समाज में ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और सदस्यों में पारस्पारिक सहयोग एवं विचार भावनाओं का आदान-प्रदान होता है। प्रत्येक समाज की अपनी रीति-नीतियाँ, परंपरा, कार्यप्रणालियाँ, श्रध्दा-विश्वास, उत्सव-त्यौहार तथा अधिकार अलग-अलग होते हैं। संक्षेप में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तथा सुरक्षा के लिए समाज का होना अनिवार्य है।

समाज शब्द : व्युत्पत्ति और अर्थ :

सामान्यतः "समाज" शब्द से अभिप्राय 'कुछ व्यक्तियोंका समूह" समझा जाता है। प्रामाणिक हिन्दी कोष में "समाज" शब्द से यह अर्थ व्यक्त होता है - "समाज" - पु.(सं.) (1) समूह, गिरोह (2) एक जगह रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का दल या समूह, समुदाय। (3) किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित की हुई सभा।"[1] "हिन्दी शब्द सागर" और "हिन्दी विश्वकोष" में "समाज" शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ लगभग इसी प्रकार से दिया है। अतः हम पुनरावृत्ति और विस्तार के मोहसे बचना चाहते है। बीसवी शताब्दी के समाजशास्त्रियों ने "समाज" शब्द का व्यापक अर्थ "विस्तृत मानवता" या "मानवजाति" अथवा "मानव संग्राम का प्रामाणिक आधार" के रुप में उल्लेख किया है।

अंग्रेजी में समाज का अर्थ - "मिटिंग विद, फॉलिंग इन विद ए मिटिंग, असेंबली, कांग्रीग्रेशन, कांग्रेस, सोसायटी, कम्पनी, एसोसियेशन, कनेकशन" आदि हैं।"[2] "समाज" शब्द के उपर्युक्त व्युत्पत्तिगत अर्थ का संक्षेप यह है कि "एक साथ अनेक लोगों का सह-अस्तित्व एवं सहयोग।

समाज की परिभाषा :

समाज की परिभाषा करने का कई समाजशास्त्रियों ने सार्थक प्रयत्न किया हैं। जिससे हम समाज की संकल्पना से भली-भाँति परिचित हो जाते है। "मनुष्य अपनी उद्येश्यपूर्ति के हेतु साधन जुटाने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से क्रियारत रहता है। मनुष्य के इस कार्यकलाप के फलस्वरुप विकसित मानव-सम्बन्धों का संकुल रुप समाज है।"[3] इंग्लड के प्रसिध्द समाजशास्त्री एम्.गिन्सबर्ग ने लिखा है कि - "समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर आबध्द है।"[4] मैकावर ने भी समाज की व्यापक परिभाषा की है। उनकी परिभाषा का सार यह है कि "सामाजिक संबंधों की पूर्ण बनावट ही समाज है।"[5] उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ समाज के स्वरुप पर प्रकाश डालती है। इसी तरह अन्य अनेक पाश्चात्य समाजशास्त्रियों ने समाज की व्याख्या अपने-अपने दृष्टिकोण से की हैं मगर उनका सार अर्थ उपर्युक्त परिभाषाओं में आ चूका है। हिन्दी में भी डॉ. शीलप्रभा वर्मा ने "समाज को सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन कहा है।"[6] जिस पर मैकाईवर की परिभाषा का प्रभाव दिखाई देता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का अनुशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि "समाज याने मानवीय संबंधों का ताना-बाना तथा मनुष्य के सामाजिक जीवन का समन्वित मूर्त रुप है। अतः हमारी दृष्टिसे समाज की परिभाषा इस प्रकार है कि, "समाज, व्यक्तियों का संगठन, सामाजिक संबंधों का

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

पार्श्व है। जो मनुष्य की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंसे निर्मित एवं विकसित होता है। इसके माध्यम से ही समाज की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को अपने अनुभव हस्तांतरित करती है।"

समाज का स्वरुप :

रिश्ते-नाते के व्यक्तियों के समुह से परिवार बनता है और अनेक परिवार के एक जगह आने से और स्थिर रहने से समाज स्थापित होता है। समाज में विभिन्न स्तर के लोगों में आदान-प्रदान की प्रक्रिया सदा ही चलती रहती है। परंपरा समाज को सुरक्षित रखती है। समाज रचना की व्याख्या करते हुए डॉ. संगवे ने लिखा है कि "किसी भी समाज के समूह के अंतर्गत व्यवस्था का प्रस्थापित प्रकार ही समाज रचना है।"[7] समाज के नियम और व्यक्ति के नियम भिन्न-भिन्न हो सकते है। व्यक्ति के धर्म समाज के धर्म नहीं हो सकते किन्तु समाज के धर्म व्यक्ति के धर्म हो सकते हैं। फिर भी समाज से अलग रहकर व्यक्ति का जीवन-यापन असंभव है।

समाज में ही व्यक्ति सुखी, समृध्द एवं महान बन सकती है। समाज पर वंश-परंपरा, परिवेश, संस्कृति, वैज्ञानिक बोध, विचार प्रणालियों और कलात्मक रीतियों का प्रभाव रहता है। मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और समाज के मध्य अनवरत रुपसे द्वंद्व चलता रहता हैं। इस द्वंद्व के तत्व से ही मनुष्य "मानव" बनता है। निष्कर्ष में इतना ही कहा जा सकता है कि व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य सुनिश्चित सम्बन्धों की वह व्यवस्था समाज है; जिस में आन्तरिक संघर्ष तथा परिवर्तन के तत्व विद्यमान रहते हैं।

व्यक्ति-समाज और सामाजिक संस्था :

व्यक्ति, समाज और सामाजिक संगठनाएँ परस्परावलंबी तथा परस्पर पूरक होती है। प्राय: व्यक्ति को खाना-पीना, आचार-विचार , भाषा, रीति-रिवाज, सभ्यता-संस्कृति आदि अनेक बातें समाज से ही अवगत होती है। समाजमें प्रेम, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, काम, क्रोध, सत्य, ईमानदारो, बलिदान आदि गुण-दोषों का अस्तित्व होने से कालानुरुप समाज का उसपर भिन्न-भिन्न स्वरुप का प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव में व्यक्ति का भी अपना योगदान होता है। सारार्थ इतना ही है कि व्यक्ति और समाज के अलग अस्तित्व की कल्पनाही केवल भ्रान्ति है। पहले व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन की सुरक्षा के लिए और जिंदगी अच्छी तरह से व्यतीत होने के लिए समाज का निर्माण किया गया और बाद में समाज के द्वारा व्यक्तिका नियमन भी होता रहता है।

सामाजिक संस्थाओं का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है, कारण व्यक्तियों के सामाजिक संबंध अनेक सामाजिक संगठनों के रुप में प्रकट होते हैं। अमरिकी समाजशास्त्री मेरिल ने लिखा है "मूलभूत

कार्यों की पूर्ति के लिए मानवी आचरणों का संगठित रुप प्रस्थापित करने वाले सामाजिक साँचे ही सामाजिक संस्थाएँ है।"[8] साधारणतया संस्था याने ऐसा संगठन जहाँ लोग मिलजुलकर विशिष्ट पध्दति से कार्य कर रहे हो। "परिवार", "अर्थ", "धर्म" और "राज्य" आदि समाज के छोटे या बड़े सामाजिक संगठन हैं। इन सभी संस्थाओं का होना समाज के सूचारू संचलन के लिए अनिवार्य है। यह सब संस्थाएँ मानव जीवन का सर्वांगिण विकास होने में सहायक तथा प्रेरक होती है। अतः उनका यहाँ संक्षेप में स्वरुप एवं महत्व विशद करना हमारी दृष्टिसे अनुचित नहीं होगा।

परिवार संस्था :

समाज की प्रथम, छोटी लेकिन सामाजिक संस्थाओंमें सबसे महत्वपूर्ण संस्था परिवार है। मनुष्यों की कामपूर्ति, प्रजोत्पादन, बाल संगोपन वात्सल्य और वंश रक्षण आदि स्वाभाविक प्रवृतियों और मानवीय भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति पर परिवार संस्था आधारित है। परिवार की निर्मिती पति-पत्नी और बच्चों से होती है। परिवार ही व्यक्ति की धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं आर्थिक आदि सभी प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन माना गया है। एक परिवार के सदस्यों में परस्पर आत्मीयता और दूसरों के लिए जिने की भावना होती है। परिवार ही वह मूलभूत संगठन है जिस पर समाज की संपूर्ण व्यवस्था निर्भर करती है। परिवार में रहने के कारण मनुष्य प्रेम, सेवा, सहयोग, अनुशासन और सहानुभूति आदि गुणों को आत्मसात कर वह सामाजिक बनता है। अपनी इस मूलभूत महत्ताके कारण ही परिवार संस्था मानवी संस्कृति में कई स्थित्यन्तर आने के बाद भी अपना अस्तित्व एवं महत्व आज भी बनाए रखी हैं और भविष्य में भी बनाए रखेगी इसमें आशंका नहीं है।

जाति या वर्ग :

जाति या वर्ग वह संगठन है जो मनुष्य को जन्म से ही एक ऐसा विशिष्ट सामाजिक दर्जा प्रदान करता है जिसमें आजन्म परिवर्तन नही होता। समाज में कुछ जातियाँ उच्च तो कुछ निम्न मानी जाती हैं, इस वर्गीकरण में व्यक्ति की कुशलता तथा योग्यता नही देखी जाती। प्रत्येक जाति के नीति-नियम, विवाह पध्दतियाँ, खान-पान, धार्मिक विश्वास अलग-अलग होते हैं। विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक नियम-बन्धनों मे बँधा हुआ जन समूह जाति कहलाता है। हमारी राय से "जाति एक बिना जीने की कई मंजिलों से युक्त ऐसी इमारत है, जिसके एक मंजिल का व्यक्ति दूसरे मंजिल में प्रवेश नही कर सकता। जिस मंजिल में वह जन्म लेता है, उसी मंजिल में ही आजन्म रहकर मरता भी वही है।

संप्रदाय :

जाति का विस्तृत रुप संप्रदाय है। व्यक्ति के निजी हितों की उपेक्षा कर विशिष्ट समुदाय के हितों के लिए प्रयत्न करनेवाला लोक समुह संप्रदाय कहलाता है। संप्रदाय में जातिगत भेदभाव न होकर एक संप्रदाय में अनेक जातियाँ भी सम्मिलित हो सकती है। लेकिन प्रत्येक संप्रदाय के लोग अपने धर्म और संस्कृति के अनुरुप ही जीवन पध्दति को अपनाते है।

आर्थिक संस्थाएँ :

मनुष्य को व्यवस्थित रुप से जीवन यापन करने के लिए अर्थ याने आर्थिक संस्थाएँ अत्यावश्यक है। भारतीय मनिषियों ने जीवन के जो चार पुरूषार्थ माने हैं उसमें भी अर्थ का स्थान है। वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय, विभाजन, और उपभोग आदि के बारे में जो मूलभूत संकल्पनाएँ, नियम होते हैं, उन्हें ही "आर्थिक संस्थाएँ" कहा जाता है। सामाजिक जीवन में विवाह, परिवार, उत्तराधिकार और व्यवसाय आदि का अर्थ के साथ अटूट रिश्ता होता है। प्राय: मनुष्य जिन्दगीभर आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा रहता है। आधुनिक भौतिकवादी युग में तो आर्थिक संस्थाओंने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। अर्थ के कारण ही आधुनिक सामाजिक वर्ग की निर्मिती हो गयी है। आज का मानव अर्थ केन्द्रित हो जाने से उसके रिश्ते-नाते, प्यार-ममत्व, त्याग-पराक्रम सब अर्थ पर निर्भर है। संक्षेप में आज अर्थ ही मानव जीवन का "राम" तथा सार-सर्वस्व हो गया है।

धर्म संस्था :

धर्म एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति का नैतिक एवं अध्यात्मिक विकास होता है। धर्म के आचरण में मनुष्य की "श्रेयस" की ओर बढ़ने की चाह तथा मनुष्य के आचरण को हितकर बनाने के लिए धर्म का नियमन रहा है। वस्तुत: मानव और अतिभौतिक शक्ति के बीच योग्य सम्पर्क प्रस्थापित करने के लिए "धर्म संस्था" की रचना हुई है। "इष्ट की प्राप्ति के लिए और अनिष्ट के निवारण के लिए अलौकिक शक्तिकी की गयी साधना या प्रार्थना ही "धर्म" कहलाती है।"[9] मानवता की सेवा तथा मानवी जीवन को पूर्ण तथा सुखी बनाना धर्मकासामाजिक उद्दयेश्य होता है।

धर्म वह शक्ति है जिससे मानव की हिंसक प्रवृतियों का संयमन होकर वह रचनात्मकता की ओर बढ़ता है। मेकेन्जी के अनुसार "धर्म का संबन्ध मानवीय पक्ष के सर्वोत्तम ध्येय सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की साधना से हैं।"[10] सामान्यत: मनुष्य जिस धर्म संस्था में जन्म लेता है उसी में वह अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है

राज्य संस्था :

राज्य के लिए राष्ट्र, सरकार, शासन, संविधान आदि पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होता है। राज्य एक अत्यन्त शक्तिशाली सामाजिक संस्था है। राज्य कानूनों की निर्मिती से सामाजिक विघटन को रोककर जनता की रक्षा और उसके विकास का प्रयत्न करता है। राज्य ही समाज का अन्र्तगत कलह और बाहय खतरों से संरक्षण कर उस पर नियंत्रण रखता है। "राज्य" समाज के विविध हितों की रक्षा के लिए निर्माण किया जाता है। समाज में प्रचलित प्रथाओं-परम्पराओं के सहारे ही राज्य अपने कानून और नियम बनाता हैं। आदर्श राज्य संस्था वह है जो सदा समाज हित के लिए, व्यक्ति के कल्याण के लिए कटिबध्द है। राज्य संस्था इतनी व्यापक होती है कि कोई भी व्यक्ति अपने आपको इसके प्रभाव से अलग नहीं रख सकता।

शिक्षा संस्था :

सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा का उद्‌देश्य आदर्श नागरिकोंका निर्माण करना होता है। शिक्षा के संस्कार से मनुष्य भौतिक तथा अध्यात्मिक सृष्टि का अर्थ समज सकता है। शिक्षा से ही व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, बौध्दिक एवं अध्यात्मिक शक्तियों के विकास से उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है। शिक्षित व्यक्ति ही सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक ढंग से करती है। शिक्षा की अनेक समाजशास्त्रियों ने व्याख्याएँ की है, लेकिन हमारा उद्‌देश्य वह नहीं है। शिक्षा का महत्व उदर निर्वाह का साधन और चारित्रिक विकास की दृष्टि से भी हैं। संक्षेप में इतना ही कह सकते है कि शिक्षा की प्रक्रिया जीवन भर चलती है और जीवन का प्रत्येक अनुभव शिक्षा ही है। परिवार, पाठशाला, समाज आदि विभिन्न संस्थाएँ मनुष्य को प्रभावित एवं शिक्षित करती है।

विवाह संस्था :

समाज में विवाह संस्था का अस्तित्व प्राचीन काल से विद्यमान है। वैदिक काल में भी गृहस्थाश्रम तथा वैवाहिक विधि का महत्व था। सभी समाजशास्त्री यह मानते हैं कि कामतृप्ति, प्रजोत्पादन, वंशवर्धन, सहयोग और मानसिक आनंद के लिए विवाह संस्था की स्थापना हुई है। विवाह मुलतः व्यक्ति के धार्मिक एवं सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए तथा परिवार के कल्याण के निमित्त सम्पन्न होनेवाला एक पवित्र संस्कार है। आज विवाह संस्था में अमूल परिवर्तन हो गया है, वह पवित्र संस्कार न रहकर एक समझौता एवं करार तक हो गया है। विवाह संस्था में विधवा विवाह, बाल विवाह, पुर्नविवाह, प्रेम विवाह, अनमेल विवाह, अन्र्तजातिय एंव अन्र्तधर्मिय विवाह आदि विविध पध्दतियों के कारण समाज में सामाजिक समस्याएँ निर्माण हो गयी हैं, जिनका अलग रुप से विस्तृत विवेचन आगे किया जाएगा।

लोकाचार - लोकनीति : रुढ़ि एवं परम्पराएँ :

समाज में व्यक्ति के आदर्श आचरण के उद्‌देश्य से लोकाचारों, लोकनीतियों, रुढ़ियों और परम्पराएँ विद्यमान रहती है। समाजके दैनंदिन जीवन पर लोकाचारों का प्रभाव रहता है। लोकाचार के अनुसार आचरण करना व्यक्तिके लिए उपयोगी होकर भी अनिवार्य नहीं होते। समाज का प्रत्येक व्यक्ति लोकाचारों का जाने-अनजाने कम-अधिक मात्रा में पालन करती है। उदा. संभाषण, भोजन, अभिवादन, वेशभूषा, प्रसाधन आदि लोकाचार समाज में विशिष्ट नियम से प्रचलित होते हैं।

विशेष रुप से बंधन कारक होने वाला लोकाचार "लोकनीति" कही जाती है। जीवन का विचार पक्ष यदि दर्शन है तो उसका व्यवहार पक्ष नीति है। समाज की दृष्टि से जो-जो बातें हितकर और कल्याणमय है वह बातें लोकनीति में आती है। जब कोई प्रथा अथवा रीति अनेक वर्षों तक अबाध रुप में चलती रहती है, तब वह रुढ़िबध्द हो जाती है। लोगों के दैनंदिन जीवन में आचरण के बारे में बनाये गए नियमनों को "रुढ़ी" कहा जाता है। समाज के आचार-विचार, आदतें अथवा रुढ़ियाँ जब अनेक पीढियों तक चलती रहती हैं तब उन्हें "परम्परा" कहा जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि समाज के सुचारू संचलन के लिए परिवार, जाति, संप्रदाय, राज्य आदि सामाजिक संस्थाएँ कार्य करतो रहती हैं। हम जो यहाँ उनका विवेचन करते आए हैं वह पर्याप्त नहीं, लेकिन लघु-शोध-प्रबन्ध की सीमा को ध्यान रखते हुए उनकी ओर केवल संकेत मात्र ही हो गया है। विवेचित सभी सामाजिक संस्थाएँ एकदम अलग-अलग न होकर पूरक एवं सहयोगी है। सामाजिक स्थिरता के लिए उनका उपयोग निर्विवाद सिध्द हो चुका है, इसलिए तो निम्नवर्ग के सामाजिक पक्ष के अध्ययन के लिए उनका संक्षेप में ही क्यों न हो स्पष्टीकरण करना आवश्यक हो गया।

सामाजिक वर्गीकरण :

प्रस्तावना :

इतिहास का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि समाज में वर्ग पध्दति प्राचीन काल में भी अस्तित्व में थी। प्राचीन काल में संघ प्रथा थी, उत्पादन और उत्पादन के साधनोंपर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न था, समूह का अधिकार था। परन्तु धीरे-धीरे समाज में ऐसा वर्ग निर्माण हुआ जिसने सारी पैदावार तथा उसके साधनों को हथिया कर लिया। इसके फलस्वरुप समाज में "दास" और "स्वामी" इस दो प्रकारके वर्गोंका निर्माण हो गया। स्वामी वर्ग दास से ज्यादा से ज्यादा काम लेता था, गुलाम विवश होकर अपने स्वामियों की सेवा करते थे। यह सेवा कार्य स्वेच्छा से नहीं भय और आतंक के कारण होता था। इन दोनों वर्ग के स्वार्थ भिन्न-भिन्न थे, दास पेट भरता तो स्वामी धन का संग्रह करता था।

महाभारत के काल से लेकर आज तक समाज चार वर्णों में विभाजित दिखाई देता है। गुण-कर्म तथा जन्म के अनुसार समाजमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र यह वर्ण और विविध पेशों के कारण अनेक जातियाँ बन गयी जैसे सुनार, चमार, लुहार, बढ़ई, दर्जी, शिकलगार आदि। इन वर्गों तथा जातियों की सामाजिक प्रतिष्ठा, उनकी सत्ता और अधिकार में विषमता होने से उनमें उच्च-नीच आदि भेद निर्माण हो गए। और उनका व्यापक प्रभाव समाज जीवन पर हो गया। हमारे अध्ययन का विषय भी विशिष्ठ श्रेणी या वर्ग के लोगों का जीवन होने के कारण उन लोगों का संक्षेप में यहाँ उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है।

सामाजिक वर्ग की परिभाषा :

सामाजिक वर्ग याने एक ऐसा वर्ग जो सामाजिक विषमता के कारण अस्तित्व ग्रहण करता है और उस वर्ग के सदस्यों में कई विशिष्ठ गुण होते हैं। "मनुष्य की आर्थिक असमानता ही मुख्य रुपसे सामाजिक विभेद को प्रभावित करती है। यद्यपि यह पूर्ण रुपेण उसका निर्धारण नहीं करती। यह आर्थिक असमानता मूलतः उस सम्बन्ध के अन्तर से उत्पन्न होती हैं, जो एक व्यक्ति या व्यक्ति समुदाय का सम्पति अथवा उत्पादन और वितरण के साधनों के साथ होता हैं----।"[11] सामाजिक वर्ग की परिभाषा करने का प्रयत्न विविध समाजशास्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार से किया हैं। उसका साधारणतः संक्षेप इस प्रकार है कि -'सामाजिक वर्ग याने लोगों का ऐसा समुदाय जो अपने सामान्य गुणों और व्यवहार के तरीकों के कारण दूसरे वर्गों के सदस्यों से अपना अलग अस्तित्व स्थापित करता है।'

सामाजिक वर्ग की कसौटी :

सामाजिक वर्ग और उसका स्वरुप देखने के पश्चात् प्रश्न यह निर्माण होता है कि सामाजिक वर्ग किस आधार पर बनाए जाते हैं? वह कौनसी कसौटी है जिससे हम यह निर्णय कर सके कि अमुक व्यक्ति अमुक सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत समाविष्ट होती है। इस विषय के सन्दर्भ में विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अनेक कसौटियों का अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रतिपादन किया है। प्रसिध्द समाजशास्त्री जी.डी.एच्.कौलंसामाजिक स्तरीकरण के लिए (1) आय, (2) व्यवसाय और (3) शिक्षा आदि कसौटियाँ मानते हैं।"[12] राय लेविस स्तरीकरण की विस्तृत कसौटियाँ मानते हैं - (1) आय, (2) व्यवसाय, (3) व्यय की आदतें, (4) स्वराघत, (5) निवास, (6) संस्कृति, (7) अवकाश के कार्य, (8) कपड़े, (9) शिक्षा, (10) नैतिक अभिरुचि, (11) अन्य व्यक्तियों के संबंध और (12) परिवार पर एक दृष्टि।"[13]

उपर्युक्त कसौटियाँ देखने पर यह सहज स्पष्ट होता है कि वह आपस में साम्य रखती

है। इसके सिवा जाति, कुल तथा वंश और सामाजिक दृष्टिकोण भी कसौटी के रुपमें स्वीकृत है। प्रस्तुत विवेचित कसौटियों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता हैं -

(1) **आय :**

सामाजिक स्तरीकरण की एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य कसौटी है। एखाद्य परिवार की आय कितनी है यह देखने के साथ-साथ उसके आय के मार्ग कितने उदात्त तथा सामाजिक दृष्टि से हितकारक है यह देखना भी हमारी दृष्टिसे योग्य होगा।

(2) **व्यवसाय :**

व्यवसाय से भी व्यक्ति को समाज में उच्च, मध्य और निम्न वर्ग में समाविष्ट किया जा सकता हैं। हमारे विचार से बेकार लोगों का भी एक वर्ग बनाय जाए, कारण आज कल ऐसे व्यवसाय हीन लोगों की समाज में भीड़ दिखाई देती है।

(3) **शिक्षा :**

शिक्षा को भी स्तरीकरण की एक कसौटी मानी जाती है। इससे प्राय: शिक्षित, अल्प शिक्षित और अशिक्षित ऐसे तीन वर्ग माने जाते हैं।

(4) **प्रतिष्ठा :**

समाज में व्यक्ति के जो व्यवहार होते है वह अपनी सामाजिक मान-मर्यादा देखकर ही होते हैं। प्रतिष्ठा प्राय: आर्थिक, राजनैतिक एवं प्रशासकीय पद द्वारा बनती-बिगडती है। रहन-सहन, खान-पान, शादी-उत्सव, कपड़े, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति आदि प्रतिष्ठा के अनुरुप ही होती हैं।

(5) **वंश :**

वांशिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर भी समाज में श्रेष्ठ-कनिष्ठ की भावना निर्माण होती है। अंग्रेज भारतीय लोगों को काले मानकर उच्च पदों से अलिप्त रखते थे। निग्रो वंश के लोगों को अमरिका में आज भी हीन दर्जा मिलता है। भारत में भी पाखाना साफ करना तथा अपराधियों को फाँसी देने जैसे निम्न दर्जा के कामों के लिए विशिष्ट वंश के लोग ही नियुक्त किए जाते हैं।

(6) **जाति :**

मनुष्य किसी न किसी जाति में जन्म लेता है और आजन्म उसकी वही जाति रहती है। ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य जन्म से ही उच्चकुल एवं उच्च जाति के माने जाते हैं, शेष सारे निम्नकुल एवं निम्नजाति के।

उपर्युक्त सभी कसौटियों में आंशिक सत्य हैं। हमारा मत है कि सामाजिक स्तरीकरण के लिए एक व्यापक कसौटी होनी चाहिए। आय, व्यवसाय, परिवार, शिक्षा आदि सबका सम्मिलित प्रभाव देखकर यह निर्णय किया जाए कि अमुक व्यक्ति अमुक सामाजिक वर्ग में रखी जा सकती है। इन सब

में व्यवसाय को प्राथमिक स्थान देकर स्तरीकरण का निश्चय किया जाय और अन्तिम निर्णय के लिए अन्य कसौटियों को भी ध्यान में लिया जाय।

सामाजिक सरंचना और निम्नवर्ग :

19 वीं सदी के प्रारंभ में जो व्यवसायिक क्रांति हुई और विज्ञान का प्रसार हुआ जिस से सामाजिक सरंचना को महत्वपूर्ण गति प्रदान हो गयी। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुध्द, रूस की जनक्रान्ति, भारत की स्वतंत्रता और विभाजन आदि घटनाओं के परिणाम स्वरुप नई-नई सामाजिक समस्याएँ पैदा होने से देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था काफी प्रभावित हुओी। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का स्वरुप अर्थ-नीतियों पर आधारित है। बड़े पैमाने पर मशीनीकरण ने देश की खेती और उद्योगों में अमूल परिवर्तन हुआ और आर्थिक विषमता की नींव ड़ाली गयी। आर्थिक विषमता के फलस्वरुप पग-पग पर सामाजिक संघर्ष का बीजवपन हो गया। "आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूलकारण है और अर्थपर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नए वर्गों का प्रार्दुभाव भी हुआ है। फलतः वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रुप से प्रतिध्वनित हुआ है।"[14] यह मत काफी हदतक समर्थनीय लगता है।

समाज का विभाजन आर्थिक विषमता के कारण ही हो गया है। आर्थिक आधार पर हमारे देश में समाज के तीन वर्ग निर्माण हुए है - (1) उच्च वर्ग (जमींदार एवं पूँजीपति) (2) मध्यवर्ग - (नौकरी पेशा करनेवाला बाबू वर्ग - अल्प सुविधा भोगी) (3) निम्नवर्ग - (किसान और मजदूर) आर्थिक विषमता के कारण पूँजीवाद बढ़ने से देश की सम्पति मुठीभर लोगों के हाथों में आ गयी और दूसरी ओर गरीबी, भूखमरी बढ़ गयी। प्रसिध्द विचारवेत्ता कार्ल मार्क्स ने "वर्ग" शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया है - "ऐसे व्यक्तियोंका एक समूह जिनका आर्थिक स्वार्थ एक-सा हो, जिनके कमाने के, धन पैदा करने के एक-से ही रास्ते हो और समाज में जिनको समान आर्थिक और सामाजिक स्थान प्राप्त हो।"[15] अतः उनकी द्रृष्टि से समाज केवल दो वर्गो में विभाजित हैं -(1) बुर्जुआ (2) श्रमिक / कई पूँजीवादी देशों में सामाजिक सरंचना (1) उच्चवर्ग, (2) मध्यवर्ग और (3) निम्नवर्ग के रुप में मानी जाती है।

संक्षेप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि "समान दर्जे के लोग इकठ्ठा आने से जो गुट या दल निर्माण होता है वह वर्ग कहलाता है। वर्ग से सामाजिक सरंचना स्थापित होती है। सामाजिक सरंचना के प्रत्येक वर्ग का वैशिष्टय यह होता है कि सभी लोगों का आचरण, जीवनमूल्य और व्यवसाय साधारणतः एक से होते है।

निम्नवर्ग :-

सामाजिक संरचना का वर्गीकृत स्वरूप देखने के पश्चात निम्नवर्ग का स्वरूप और अवस्था मोटे तौर पर देखना महत्वपूर्ण है। इस श्रेणी में किसान एवं मजदूर वर्ग के लोग आते है। खेती पर उपजीविका करनेवाले किसानों का जमींदार, महाजन शोषण करते है अतः यह वर्ग विवश होकर जमीन पर के अपने स्वामित्व से वंचित होता रहता है। दिन-रात कड़ी मेहनत करने पर भी किसानों को दो वक्त की रोटी पाना दुभर होता है। विभिन्न कारखानों में आठों-प्रहर खपनेवाला और मालिकों का उत्पादन बढ़ाने वाला एक अधिकार हिन पूर्जा याने मजदूर वर्ग है। यह मालिकों के जन्म सिध्द शोषण का शिकार होता है। संक्षेप में इन दोनों ही वर्ग का शोषण जमींदार और पूँजीपति वर्ग द्वारा होता है।

समाजशास्त्रियों ने निम्नवर्ग को भी दो वर्गों में विभाजित किया हैं - (1) उच्च - निम्नवर्ग (2) निम्न - निम्नवर्ग

(1) **उच्च - निम्नवर्ग :-** इस वर्ग में कारखानों में काम करनेवाले तथा दैनिक मजदूरी पानेवाले श्रमिक आते हैं। ऐसे खेत-मजदूर भी जो दूसरों की भूमिपर, दूसरों के औजारों के साथ, दूसरों के अधिकार में तथा दूसरों के लाभ के लिए काम करते हैं और जो उपज का चौथा या आठवा भाग लेते हैं, या दिनभर की अपनी मेहनत के बदले में साँझ को टूटी-फूटी मजदूरी पाते हैं, जिसका उपज पर कोई अधिकार नहीं रहता। हमारे देश के डाक विभाग में काम करने वाले "रनर", विद्युत या टेलीफुन विभाग के लाइनमैन, कुली, ठेकेदारों के आधिन रहकर काम करनेवाले कारागीर, ट्रक चालक आदि इस वर्ग में सम्मिलित किये जा सकते है।

(2) **निम्न - निम्नवर्ग :-** इस वर्ग के लोगों को आय का कोई निश्चित साधन नहीं होता, न कोई निश्चित तनखा। इन्हें महीने में कई दिन काम न मिलने से बेकार रहना पड़ता है। इनके बीच हमेशा मजदूरी की चिन्ता, पैसों की कमी, मँहगाई, मालिक के बे-रहमी की चर्चा होती रहती है। हर दिन तथा सप्ताह में मजदूरी मिलने पर ही इनके रोटी का प्रबन्ध होता है, अन्यथा कभी-कभी खालो पेट रहना पड़ता है। साधारण नागरिक जीवन की सुविधाओं से यह प्रायः वंचित ही रहते हैं।

निम्नवर्ग के लोगों का जीवन अत्यन्त दयनीय रहता है। न उन्हें पेट भर रोटी मिलती है न तन ढँकने के लिए पर्याप्त कपड़ा, न धूप-वर्षा-शित से बचने के लिए कोई मकान नशिब होता है। अध नंगे-भूखे रहकर वे किसी टूटी-फूटी झोपड़ी में या रास्ते के किनारे वृक्ष की छाया में, फूटपाथ पर, पूल के नीचे रहकर दिन गुजारते रहते हैं। मानव शरीर धारण करने मात्र से ही "मानव" कहे जाते है, अन्यथा उनका जीवन पशु-पक्षियों के जीवन से भी गया-बीता होता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है

कि किसान-मजदूर, भिक्षुक तथा शारीरिक श्रम करनेवाले सबका हमारे विचार से एक ही वर्ग है और वह है निम्नवर्ग। निम्नवर्ग में निम्न-निम्नवर्ग और उच्च-निम्नवर्ग यह भेद दोनों में निश्चित सीमा निर्धारण की दृष्टि से कठिन है। अतः उपर्युक्त विवेचित सभी लोगों तथा वर्गों को निम्नवर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित करना उचित एवं सुविधाजनक होगा।

निम्नवर्ग की विशेषताएँ :-

सामाजिक वर्गीकरण, वर्गीकरण के आधार, विभिन्न सामाजिक वर्ग, निम्नवर्ग की परिभाषा एवं स्वरूप पर विचार करने के बाद प्रश्न यह खड़ा होता है कि वह कौनसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधारपर पहचान सके की यह लोग निम्नवर्ग के हैं। आम तौरपर निम्नवर्ग में यह विशेषताएँ पाई जाती हैं -

(1) **अर्थाभाव :-** अर्थाभाव के अभिशाप से ही निम्नवर्ग सामाजिक विषमता का शिकार होता है। हमेशा आर्थिक विवंचना के कारण यह वर्ग अभाव की पीड़ा, घुटन एवं विवशता का जीवन जीने के लिए मजबूर होता है। जमींदारों, साहूकारों, पूँजीपतियों और मालिकों के वैयक्तिक और सामूहिक कारनामों से देहातों, नगरों में निर्धन जनता का शोषण निर्दयता से होता आया है। अमर्याद आर्थिक शोषण के कारण ही आज वर्ग संघर्ष और सामाजिक असंतोष शिखर तक पहूँचा है।

(2) **संदेह और आत्मविश्वास का अभाव :-** आज के अर्थ केंद्रित मानव समाज में अर्थाभाव के कारण निम्नवर्ग मन ही मन टूटा हुआ है। उसका दिल अपने प्रति स्वाभिमान तथा आत्मगौरव की अपेक्षा जीवन के प्रति संदेह और आत्मविश्वास की भावना से भरा है। रूपये ने उसके प्रेम, अपनापन, ममता, विश्वास, विनम्रता आदि मानवतावादी रिश्तों का गला घुंट दिया है। और क्षण-क्षण में पग-पग पर शक, क्रोध, अलगाव, हिंसा का सुप्त तूफान उसके मन में मचलने लगा है। धनवान लोग भी निर्धन और निम्नजातियों की ओर घृणा तथा उपेक्षा की नजर से देखते है।

(3) **मजबूरी और दुर्दशा :-** निम्नवर्ग आज चारों ओर से टूटा हुआ तथा बिखर गया है। वह मजबूर एवं लाचार दिखाई देता है। भूख इस वर्ग की समस्या बन गयी है। निम्नवर्ग के लोगों को कभी-कभी अपनी विवशताएँ और दुःखद पीड़ाएँ अस्ह्य होने से उससे छुटकारा पाने के लिए उन्हें मृत्यु प्रिय लगने लगती है।

आपसी झगड़े, आर्थिक चिंता, परिवार के झंझट, समाज का उपहास, भूख, निर्धनता, गंदगी के कारण बच्चों और बुढ़ों की मरनासन्न बीमारियाँ, शारीरिक और मानसिक क्लेश, अनेक बंधन और व्याकुलता के बीच गुजरनेवाली निम्नवर्गीय लोगों की जिन्दगी राख बनकर रह गयी है। पेट की आग को

तृप्त करने के लिए इस वर्ग की नारी कभी-कभी पर पुरूष की वासना तृप्त करने के लिए मजबूर होती है। संक्षेप में भूख इस वर्ग को मरना नहीं देती और न सुखपूर्वक जीना देती है।

(4) **अत्याचार एवं अन्याय :-** निम्नवर्ग पर होने वाले अत्याचार तो सार्वत्रिक और सार्वकालिक है। निम्नवर्ग पर उच्च वर्ग और कभी-कभी मध्यवर्ग द्वारा अत्याचार, अन्याय एवं जुल्म होते है। जमीदारों के किसानों पर, मालिक के नौकरों पर, अधिकारी के कर्मचारियों पर, मिल मालिक के मजदूरों पर, पुरूषों के नारियों पर होनेवाले अत्याचार सर्व विदित है। इन्हीं अत्याचारों के मिले-जुले परिणाम से ही निम्नवर्ग नारकीय जीवन-यापन करने के लिए विवश होता है।

(5) **अज्ञान एवं अशिक्षा :-** निम्नवर्ग में अज्ञान एवं अशिक्षा की मात्रा अधिक है। प्रायः गरीबी और अज्ञान दोनों हाथ-में-हाथ डालकर रहते है। बहुधा जहाँ गरीबी होती है वहाँ अज्ञान होता है और जहाँ अज्ञान होता है वहाँ गरीबी होती है। इन दो पाटों के बीच निम्नवर्ग एक अद्दद दाने के समान बुरी तरह पीसा जा रहा है। यह लोग इतने गरीब होते है कि अपने बच्चों को स्कूल भी नहीं भेज सकते, या बीच में ही शिक्षा बंद करके उन्हें रोजी-रोटी के लिए काम में लगाया जाता है। अज्ञान के कारण इनको सहज ठगाया-फँसाया जाता है साथ ही कई प्रकार की बिमारियों के शिकार बन जाते हैं।

अंधविश्वास :- निम्नवर्ग के लोग अशिक्षित होने से प्रायः अंधविश्वासी होते हैं। धर्म के आडम्बरों एवं बाह्याचारों, पाप-पुण्य में विश्वास रखते हैं। देव धर्म का झूठा डर दिखाकर धर्म के ठेकेदार पुरोहित-पुजारी इन्हें गुमराह करके लूटते हैं। अज्ञान के कारण उनकी बातों पर विश्वास करते हैं और अपना जीवन अधिक ही दयनीय बना लेते है।

रूढ़ि एवं परम्पराप्रिय :- निम्नवर्ग के लोग रूढ़ि-परम्परा का उल्लंघन नहीं करते। प्रतिगामी एवं पिछड़े हुए विचारों के संस्कार होने से रूढ़ियों एवं परम्पराओं को वह सीने से लगाए बैठते है। रूढ़ि-परंपरा के खिलाफ आचरण करना इन्हें पाप लगता है।

दया के आकांक्षी और कृतज्ञ :-

निम्नवर्ग के लोग हमेशा उच्च वर्ग के दया की आशा में जीवन जीते है। दूसरों की कृपा, दया इन्हें वरदान लगता है। अमीरों के शादी-समारोह, उत्सव-प्रसंगों में कुछ पाते हैं, पेट भर खाते है तब कृतार्थ होते है। दया एवं उपकार करने वालों के प्रति जिन्दगीभर वफादार रहना इनका वैशिष्ट्य है। नमकहरामी और कृतघ्नता इन्हें घोर पाप लगता है। "भगवान की आँखें कभी-न्-कभी खुलेगी" इस विश्वास के कारण कभी-कभी तो कुडे-करकट के ढ़ेर पर झूठे पत्तल चाटनेवाले कुत्तों जैसी स्थिति इनकी होती है।

नारकीय जीवन :-

निम्नवर्ग के लोगों का जीवन नारकीय तथा करूणाजनक होता है। सुख और ऐष के साधन तो उन्हें सपने में भी प्राप्त नहीं होते। पूँजीवाद के विकास के परिणाम स्वरूप यह वर्ग अपने देहातों से तो टूटता गया लेकिन शहरों का भी बनकर नहीं रह सका। शहरों में भी नौकरी-व्यवसाय की अनिश्चिती होने से शहर बेकारों से भर गए। पेट की आग से मजबूर होकर आए दिन गरीबों का जीना हराम हो गया। प्यार, ममता पैसों पर बिकने लगी, कीड़े-मकौड़े के समान भूख से आक्रान्त निम्न-वर्ग का जीवन शहरों में नारकीय बन गया।

एकता का अभाव :-

निम्नवर्ग में एकता का अभाव है, कारण इस में कई जाति-धर्म, वंश, संप्रदाय के लोग होते है। निर्धनता, आपसी झगड़े, परस्पर आसूया, अशिक्षा आदि के कारणों से निम्नवर्ग समाज का प्रभावशाली हिस्सा कभी न बना। वैयक्तिक घुटन, गम में जिन्दगी बिताते हुए आया दिन मार करने में उनकी शक्ति खर्च होती है। यह वर्ग भूतकाल में कभी एक नहीं हुआ और भविष्य में भी एक होने की संभावना नहीं है।

मानवता की भावना :-

निम्नवर्ग में मानवता के दर्शन जिस मात्रा में होते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य वर्ग में होते हो। यह वर्ग स्नेह-प्रेम, सहयोग, ईमान का पूरी निष्ठा से पालन करता रहता है।

दिल का विद्रोही :-

आर्थिक अभाव, बेरोजगारी, अशिक्षा, समाज से प्राप्त घृणा आदि कारणों से इस वर्ग का जीवन अकथनीय व्यथाओं से ग्रस्त है। सामाजिक अपमान, माँगों तथा आवश्यकताओं के पूर्ति की असमर्थता से इनके हृदय में व्यथा, ईर्ष्या और द्वेष की भावनाएँ भरी रहती हैं। उच्च वर्ग के प्रति इनके हृदय में ईर्ष्या-द्वेष की भावना सुलगती रहती है, जो सामाजिक दबाव तथा आतंक के कारण दबी तथा मौन रहती है। धन से प्राप्त प्रतिष्ठा और उसके अभाव से उत्पन्न हीनता को वे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। अतः झूठी आशा के बलपर वे जुए बाजी, नशा पान आदि में लगे रहते हैं।

आशावादी :-

आज निम्नवर्ग अपनी दिन-ब-दिन बढ़नेवाली गरीबी तथा उनके कारणों के प्रति सचेत हो गया है। आधुनिक काल में उसे अपने वर्ग का बल एवं शक्ति संगठन से बढ़ाने की आवश्यकता महसूस

होने लगी है। आधुनिक युग की इस परिवर्तन की माँग के लिए वह उत्तरोत्तर कार्यरत दिखाई देता है। व्यापक शोषण तथा सामूहिक दुर्दशा के खिलाफ की लड़ाई इक्के-दुक्के के बस की बात नहीं तो उस में विशाल जन संगठन की शक्ति के सहारे क्रान्तिकारी परिवर्तन की आशा बलवत्तर हो गयी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यह कसौटियाँ अर्थात् विशेषताएँ निम्नवर्ग का स्वरूप निश्चित करने के लिए केवल आधार रूप में ग्रहण की जाय। यह विशेषताएँ केवल संकेत मात्र है कोई ठोस नियम नहीं है। आधुनिक युग की बदलती सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप नई-नई विशेषताएँ भी निर्माण हो सकती है। उपर्युक्त विशेषताओं में से किसी व्यक्ति में एखाद्-दूसरी विशेषता न हो तो भी उसे निम्नवर्ग में सम्मिलित करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

निम्न वर्ग के व्यक्ति कौन ? :-

निम्नवर्ग की परिभाषा, स्वरूप और विशेषताओं को देखने के पश्चात् सवाल पैदा होता है कि आखिर निम्नवर्ग के अन्दर समाज के कौन-कौन से व्यक्ति आते हैं? हमारे विचार से व्यापक तौर पर भारतीय किसान, आलुतेदार-बलुतेदार, आदिम जातियाँ और पहाड़ी लोग, शहरों का निम्नवर्ग, कुली, रिक्शोवाले, ताँगेवाले, कोचवान, ठेलेवाले, खोमचेवाले, टपरीवाले, ड्राईव्हर, बड़े घर की नौकर-नौकरानियाँ, भिक्षुक, वेश्याएँ, लावारिस बच्चे और डाकू आदि निम्नवर्ग के अन्तर्गत आते हैं। लेकिन यहाँ हम लघु-शोध-प्रबन्ध की सीमा को देखकर उनके ही स्वरूप और दशा का विवेचन करना उचित समझते हैं जिनका नागार्जुन के उपन्यासों में निम्न वर्ग के रूप में चित्रण दिखाई देता है।

भारतीय किसान :-

भारतीय खेती निसर्ग की कृपा दृष्टि पर निर्भर होने से हमारे किसानों की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। राजा, जमींदार, महाजन-साहुकार तथा सरकारी अफसरों द्वारा किसान हमेशा पीड़ित ही रहा है। अशिक्षा-अज्ञान, गरीबी-निर्धनता, अस्वच्छता-बिमारियाँ, रूढ़ि प्रियता एवं अंधविश्वास आदि निम्न वर्ग की विशेषताएँ किसानों में भी दिखाई देती है। अपनी दुर्दशा का कारण ईश्वरी इच्छा तथा पूर्वसंचित कर्मों का फल एवं प्रारब्ध है अतः उसे भुगतना ही पड़ेगा यह अंधश्रध्दा उस में गहराई तक पैठ गयी है। कड़ी मेहनत के बाद भी किसान अपना और परिवार का पेट नहीं भर सकता था, न कि सेठ-साहुकारों का कर्ज-सूद चुकाने में कामयाब होता था। अतः उसे विवश होकर कभी जमीन, कभी घर, कभी गहने-बर्तन, कभी बैल तो कभी बीबी गिरवी रखकर जिन्दगी का बोझ ढ़ोना पड़ता है। साथ ही कभी बीमारी, कभी परिवार की भूख, कभी धार्मिक कार्य तो कभी बेटी की शादी इसे गरीबी के कुएँ में न निकलने के लिए धकेल देती है।

आलुतेदार - बलुतेदार :-

देहातों में रहनेवाले नाई, चमार, लुहार, सुनार, दर्जी, सुतार, कुम्हार, धोबी, जुलाहा, मेहतर आदि व्यवसायिक जाति के लोगों का समावेश इन में होता है। अंग्रेजी शासन और पूँजीवाद के प्रभाव से इन्हीं लोगों के जीवन में परिवर्तन होकर मजदूर बनने को विवश हो गए हैं। फलतः इनके जीवन में दुःख, दैन्य, दारिद्रय, अभाव और घुटन छा गई।

सभी प्रकार के मजदूर :-

निम्नवर्ग में प्रायः सभी प्रकार के मज़दूर आते है। मिलों-कारखानों, जमींदारो के यहाँ काम करनेवाले मजदूर। दिनभर कड़ी मेहनत करने के बाद भी इन्हें दो वक्त की ढंग की रोटी नसीब नहीं होती। अपने असाह्य जीवन का कड़ुआपन शराब की नशे में डूबोंकर स्वयं को ही भूल जाते हैं।

बड़े घर के नौकर - नौकरानियाँ :-

उच्च-वर्ग के घरों में काम करनेवाले नौकरों की स्थिति विचित्र हैं। इन नौकर-नौकरानियों के सम्बन्ध में उच्च-वर्ग के लोगों में अविश्वास एवं घृणा की भावना रहती है। कभी-कभी नौकरानियों के साथ मालिकों का जिस्मानी रिश्ता होता है तो कभी नौकरों के भी मालिक की बेबी-बहू-बेटियों के साथ अवैध यौन संबंध होते है। इनमें प्रायः खानसामा, चौकीदार, ड्राईव्हर आदि का समावेश होता है।

वेश्याएँ :-

परिस्थिति वश मजबूर होकर मालिक लोग तथा समाज की वासना का शिकार बनी वेश्याएँ भी निम्नवर्ग में आती है। अपने तन का बार-बार सौदा करनेवाली इन वेश्याओं का जीवन बड़ा ही घृणास्पद एवं नारकीय तथा नरक से भी बदत्तर होता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि निम्नवर्ग में विभिन्न जाति-धर्म, पंथ, कुल-वंश और खानदान के व्यक्ति आते हैं। प्रायः जिन लोगों को उच्च वर्ग तथा मध्यवर्ग ने अपनाने से ना-नकूर किया है; वे सब लोग निम्नवर्ग के है। यह सच है कि जब व्यक्ति सीधे रास्ते पर चलना चाहते हुए भी समाज के धुरीन तथा धर्म मार्तंड उसे उस मार्ग पर चलने नहीं देते तब वह मजबूर होकर बुरे रास्ते को अपनाता है। उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित इन्हीं लोगों का और उनके विद्रोह का हमें अध्ययन करना है।

12287
A

निम्नवर्ग का सामाजिक पक्ष :-

नागार्जुन स्वयं उपेक्षित तथा निर्धन वर्ग के प्रतिनिधि होने से उन्हें निम्नवर्ग के जीवन का पूरा अनुभव है। उन्होंने इस वर्ग को अभावों और यातनाओं से झूजते देखा है, अतः यह वर्ग उनके उपन्यासों में अत्यन्त स्वाभाविक तथा जीवन्त रूप में साकार हुआ है। आँचलिकता के साथ-साथ उनके उपन्यास सर्वहारा वर्ग का चित्रण करनेवाले सामाजिक उपन्यास भी है। नागार्जुन ने देखा कि यह वर्ग जमीदारों के शोषण की चक्की में बुरी तरह पिस रहा हैं, गरीब और पीड़ित मजदूरों से बेगार ली जा रही है या कम मजदूरी पर जबरदस्ती से काम लिया जा रहा है। नागार्जुन का उपन्यास 'बलचनमा' इसी वर्ग का प्रतिनिधि है। 'रतिनाथ की चाची' के कुल्ली राऊत का जीवन भी जमीदारों की जूठन खाकर और पहिरन पहनकर बीत गया है। विधवा देवी गौरी का जीवन भी समाज के तिरस्कार से दयनीय बन गया है। 'बाबा बटेसरनाथ' के बेगार देनेवाले श्रमिक शत्रूमर्दन राय, 'दुखमोचन' में हरखू की माँ और बौधू चाचा, 'वरूण के बेटे' के खुरखुन, गोनड, मधुरी 'कुम्भीपाक' की चम्पा, भुवन, इंदिरा, 'जमनिया के बाबा' की इमरतिया, 'उग्रतारा' की उगनो, 'हीरक जयंती' का बुझावन राम आदि निम्नवर्ग के प्रतिनिधि पात्र है। इन सबका जीवन नागार्जुन ने गरीबी,अभाव, दयनीयता-दुर्दशा, सामाजिक उपेक्षा तथा तिरस्कार, परंपरा के शिकार, अज्ञान-अनपढ़ता आदि धागों से बुना है। 'उनका सम्पूर्ण साहित्य उन अत्यन्त साधारण लोगों का साहित्य है जो अपनी सारी मेहनत, निष्ठा और ईमानदारी के बावजूद एक घृणित और नारकीय जीवन के लिए अभिशप्त हैं।'[16] उनके सारे स्त्री-पुरूष पात्र भारतीय निर्धन वर्ग के प्रतीक बनकर उपन्यास में उपस्थित हुए हैं। इन्हें कभी बचपन में स्कूल जाने का मौका नहीं मिला, इनका जीवन बड़ी जातवालों की मेहरबानी पर निर्भर है। फिर भी इनके हृदय में दूसरे पीड़ित और शोषित लोगों के लिए सहानुभूति है। लेकिन नागार्जुन का यह निम्न संसार विवश होते हुए भी अपने बाहूबल पर विश्वास रखता है, अपने श्रम से कमाई रोटी खाना चाहता है। संगठन और विद्रोह के माध्यम से वर्गहीन समाज की स्थापना करने का आशावाद लिए हुए है।

एक परिवार के सदस्यों का परस्पर संबंध और परिवार का बाकी परिवारों से सम्बन्ध का अध्ययन करे तो समाज का अध्ययन हो जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास और सामाजिक संबंधों का मूलाधार परिवार ही है। परिवार में प्रायः माता-पिता और उनकी सन्तानें आती है। अतः यहाँ नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग के नारी और पुरूष के विविध रूपों, उनकी विशेषताएँ तथा चेतनाएँ, व्यवसाय तथा मजबुरियाँ आदि का अध्ययन एवं विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

नारी :-

सेवा और त्याग की मूर्ति नारी को भारतीय पुरूष प्रधान समाज द्वारा शोषित, पीड़ित,

अशिक्षित तथा हीन वृत्ति का शिकार होना पड़ा है। धर्म तथा परम्परा के बन्धन के कारण नारी से सम्बधित अनेक कुप्रथाएँ युगों से चलती आयी है। परिणामतः नारी जीवन दुःखों, पीड़ाओं, व्यथाओं, अत्याचारों, घुटन एवं कुंठाओं, आहे तथा आक्रोश की कहानी बनी है। शताब्दियों से उपेक्षित नारी के प्रति नागार्जुन ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में सहानुभूति प्रदान कर नारी की स्थिति में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतिपादित की है। बालविवाह, पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह, दहेज, अशिक्षा और वैधव्य आदि के कारण स्त्रियों का विकास रूक गया था। नागार्जुन जैसे भावूक और चेतनादायी उपन्यासकार ने इन कु-रीतियों के विरूध्द विचार-प्रसार कर श्रमजीवी नारी समाज की स्थापना का प्रयास किया है। चम्पा, भुवन, मधुरी, उग्रतारा आदि नारियाँ वर्तमान भारतीय महिलाओं की बदलती हुई मनोवृत्ति से युक्त दुस्साहसिक और बोल्ड है। वे स्त्री स्वाधीनता की भीख नहीं माँगती बल्कि अन्याय सहनेवाले पुरूषों को भी ललकारती है। नर्मदेश्वर की भाभी तेज स्वर में कहती है - "सुन्दरपुर - मढ़िया के नौजवान गोबर हैं, ऐसा गोबर जिस पर उँगलियाँ रखो तो काठ बनेंगे, कंडे नही।"[17]

नागार्जुन की महिलाएँ कही-कही काम-दुर्बल दिखाई देती है, पर विचार से दुर्बल तथा प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त नहीं। वह आत्मनिर्भर होकर समान्तर दुनिया रचने की तैयारी करती दिखाई देती है। "वरूण के बेटे" में मधुरी सोचती है "अब वह कभी उस नशाखोर बुड्ढे की लात-वात बर्दाश्त करने नही जाएगी.... फिर से शादी कर लेगी किसी दिलेर, नेकचलन और मेहनतकश जवान से... और बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नही गुजार सकती है क्या?"[18] मतलब नागार्जुन की नारी भारतीय परम्पराओं से ग्रस्त-पुरूष की दासी नही तो उसके कन्धे से कन्धा लगाकर काम करनेवाली मधुरी, माया, चम्पा जैसी परिश्रमी और साहसी स्त्रियाँ है। वह स्त्री-पुरूष में समानता और सामंजस्य चाहती है। चम्पा भुवन को लिखती है - "इस कुम्भीपाक नरक से निकालकर नई दुनिया के समझदार लोगों के बीच पहुंच गई हो... वहाँ, जहाँ के नर-नारी मिल-जुलकर आगे बढ़ते है, जहां कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चकमा नहीं देता, जहाँ पुरूष बल होगा तो स्त्री बुध्दि होगी, स्त्री शक्ति होगी तो पुरूष ज्ञान, भुवन तुम निश्चय उसी संसार में पहुँच गई हो।"[19] स्त्री-पुरूष समानता के विभिन्न अंगों के बारे में राय साहब चम्पा को कहते है कि "श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरूचि सभी आवश्यक हैं चम्पा। जीवन में इन पांचों का समन्वय करना होगा। पुरूषों की ही बपौती नही है, स्त्रियों का भीं साझा है इन में।"[20] संक्षेप में नागार्जुन स्त्रियों में आत्मविश्वास देखना चाहते है। उनकी नारी प्रगतिशील चेतना से युक्त दिलेर और विचार पुष्ट हैं। नागार्जुन की नारी रूढ़िवादी समाज को आव्हान देकर नए सिरे से अपना जीवन बसाती हैं।

माँ :-

नारी के अन्य रूपों से माता का रूप बड़ा ही गरिमामय एवं वंदनीय है। नारी जहाँ पति के प्रति समर्पित रहती है वहाँ पुत्र-पूत्री के प्रति भी समर्पित रहती है। संतान की भलाई के लिए वह स्वयं दुख सहकर जीवन भर श्रम करती है। निम्नवर्ग की माँ तो शिक्षा, समय और सुविधाओं का अभाव होते हुए भी बच्चों के लालन-पालन, खान-पान, भविष्य एवं चरित्र के बारे में चिंतित रहती है। और गरीबी की दुःखभरी जिन्दगी से बाहर निकलने के लिए बच्चों को पढ़ा-लिखा होना आवश्यक समझती है। नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित निम्न-वर्ग में माँ-संतान के संबंध को दो रूपों में व्यक्त किया जा सकता है - (1) माँ-बेटा और (2) माँ-बेटी।

माँ-बेटा :-

नागार्जुन के उपन्यासों में निम्न वर्ग के माँ-बेटे संबंध का सुन्दर तथा अविस्मरणीय चित्रण हुआ है। गौरी और उमानाथ (रतिनाथ की चाची), बिरजू और गुहेश्वरी (पारो), बलचनमा और उसकी माँ (बलचनमा) आदि का चित्रण निम्नवर्ग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। माँ के रूप में प्रायः सभी विधवा ही है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्गीय माताएँ अपने संतान के प्रति प्यार-ममता तथा सहिष्णुता भरी भारतीय नारी है। गौरी ने पति मृत्यु के बाद शुभंकरवालों की यातना तथा बहिष्कार की शिकार होकर भी परिस्थिति से संघर्ष तथा तपस्या करते हुए उमानाथ को पाला-पोसा था। उसी बेटे द्वारा अपमानित होने से खुदखुशी करना चाहती है, लेकिन पुत्र प्रेम से व्याकुल होकर ही ऐसा नहीं करती। बलचनमा की माँ का चित्रांकन उपन्यासकार ने युगीन संदर्भ के अनुरूप किया है। माँ-बेटे दोनों में अन्याय के खिलाफ झगड़ने की अदम्य कामना तथा दृढ़ संकल्प है। स्वाभिमान, परिश्रम, साहस और अत्याचार के विरोधी संघर्ष आदि गुण माँ द्वारा बलचनमा में संक्रमित देखकर ऐसा लगता है कि यह माँ अपने बेटे के कल्याणकारक भविष्य की चिन्ता करनेवाली आदर्श भारतीय माता है। "पारो" उपन्यास के बिरजू और गुहेश्वरी संबंध ममत्व तथा अपनेपन से युक्त है। गुहेश्वरी को बेटे की चिन्ता है, उसका हृदय बेटे के प्रति लाड़-प्यार से भरा है। इसलिए ही बेटे को सुचारू शिक्षा प्राप्त होने के लिए अपने भाई के यहाँ मोतीहरी रखती है।

निम्नवर्ग की यह माताएँ परिश्रमी-स्वावलंबी होने से अपने बेटों को चारित्र्य की शिक्षा और स्वाभिमान का उपदेश करती है। गौरी दिन में आठ-दस घंटे सूत कातकर पच्चीस-तीस रूपये महावार अपने पुत्र उमानाथ के विवाह के लिए इकट्ठा करती है। मेहनत की शिक्षा बलचनमा को माँ

ने बचपन से दी थी कि "अभी से पेट की फिकर नहीं करेगा तो बहतरा हो जायेगा।"[21] अपने बेटे बलचन को जीवन में चारित्र्य, शील और स्वाभिमान की सीख देती हुई कहती है "बबुआ बालचन! मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।"[22] माँ का स्वाभिमान और परिश्रमी वृत्ति का प्रभाव बलचनमा के चरित्र पर होने से वह भी मालिकों के अत्याचारों के सामने झुकना नहीं चाहता है - "बहुत बड़े भागमंत को ही ऐसी माँ मिलती है भैया। मैंने भी यह ठान लिया कि चाहे उजड़ जाना परे, चाहे जहल-दामुल हो, चाहे फाँसी चढ़ूँ मगर कभी जालिम के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा।"[23] बिरजू के हृदय में भी माँ के प्रति श्रध्दा, आदर और सम्मान का भाव है।

निम्नवर्ग की यह माताएँ कभी परिस्थिति के सामने विवश होती दिखाई देती है तो कभी अपने पूत्र द्वारा उपेक्षित तथा तिरस्कार का भाजन बनती है। बलचनमा की माँ पति मृत्यु के बाद अपने लाड़ले को कच्ची उम्र में मालिक के घर चरवाहा बनाती है। पिता की दुखद मृत्यु के दर्द से आँसू अभी सूखे भी नहीं थे कि उसी कसाई जमींदार की भैंस चराने के लिए बलचनमा को बाध्य होना पड़ा। उमानाथ को दमयन्ती द्वारा अपनी माँ के कुकर्म का जब पता चलता है तब वह ग्लानी और क्षोभ से अपनी माँ को लातें जमाता है और उसका तिरस्कार करता है। कलकत्ता जाते वक्त उमानाथ के यह शब्द "चर्खा चलाकर तूने दुनिया-भर को बतला दिया है कि उमानाथ आवारा है, कलकत्ता में खुद मौज करता है और घर पर माँ जुलाहिन हुई जा रही है। खबरदार! अब कभी चर्खा छुआ तो हाथ काट लूँगा।"[24] यह बोल बेटे के दिल में माँ के प्रति घृणा-अवहेलना की भावना ही व्यक्त करते हैं।

निष्कर्षतः नागार्जुन के उपन्यासों में अंकित माँ-बेटा संबंध श्रध्दा, आत्मीयता तथा भारतीय "मातृदेवो भव" परम्परा के अनुकूल ही है। नैतिकता का दंभ तथा संकुचित विचार के कारण गौरी और उमानाथ के बीच कटु संबंध है। बलचनमा और उसकी माँ का संबंध तो यथार्थवादी भूमिका पर आधारित आदर्श तथा भविष्य के लिए पथदर्शक है।

माँ-बेटी :-

नागार्जुन के उपन्यासों में माँ-बेटी की परिधि में गौरी और उसकी माँ (रतिनाथ की चाची), रेबनी और उसकी माँ (बलचनमा), बिसेसरी और रामेसरी (नई पौध), माया और उसकी माँ (दुखमोचन), पार्वती और उसकी माँ (पारो) आदि आती है। नागार्जुन ने माँ-बेटी का संबंध अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण, सौहार्दभरा तथा ममत्व से युक्त स्थापित किया है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित बेटी के दिल में माँ के प्रति विश्वास और आत्मीयता है। माँ ही बेटी की पालक, सखी और पथदर्शक बन गयी हैं। विधवापन का अभिशाप भूगत रही गौरी ससुराल शुभंकरपुर में देवर जयनाथ के मोह की आधिन बनकर गर्भ धारण करती है। विपत्तिके इस प्रसंग

में जब जयनाथ उसे समाजद्वारा बहिष्कृत होकर दर-दर की ठोकरे खाने के लिए अकेली छोड़कर काशी चला जाता है तब उसे माँ की ममता भरी गोद याद आने से कहती है "आज तो नहीं, कल रातोंरात वह तरकुलवा चली जायेगी। वहाँ गाँव में कई चमाईनें हैं। डाँट, फटकार, गंजन-फजीहत के बावजूद भी माँ आखिर माँ ही होगी। लड़की का कवच बनकर तमाम मुसीबतों को वह अपने ऊपर ले लेगी, इसमें क्या कुछ शक है। "[25] यह दृढ़ विश्वास मन में संजोकर गौरी मायके जाती है और माँ भी विशाल हृदय से बेटी के अपराध को पेट में पचा लेती है। माँ के सहयोग से ही गौरी गर्भ की मुसीबत से मुक्ति पाती है।

"नई पौध" की बिसेसरी रामेश्वरी की इकलौती बेटी है। विधवा "रामेसरी ने ममता का मक्खन और स्नेह की सुधा खिला-पिलाकर बिसेसरी को पाला पोसा था। बड़े ही जतन से उसने लड़की को अपर प्राइमरी तक शिक्षा दिलवाई थी...। "[26] माँ रामेसरी ही बिसेसरी की पालक - सखी तथा मार्गदर्शक होने से अपनी बिटिया का विवाह साठ वर्षीय चतुरा चौधरी से तय होते सुनकर मन में क्षोभग्रस्त होकर विरोध करती है और कहती है "उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो रामेसरी मेरा नाम नहीं। एक बुड्ढा मेरी लड़की का सींथ भरेगा, मुँह झुलसा दूँगी मरदुए का। "[27] रामेसरी का यह क्रोध बेटी के लिए प्रेम और लगाव का ही कारण है। इस अपनेपन के कारण ही बिसेसरी का विवाह बुढ़े से करने के बजाय उसकी मृत्यु चाहती है - "बिसेसरी को कनेर की गुठली घिसाकर पिला दे। क्या करेगी जीकर बिसेसरी? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर।। "[26] अर्थात् प्रेम के कारण तथा पुत्री की कल्याण कामना से ही वह जहर देने को तैयार हो गई है। "दुखमोचन" के माया की माँ भी बेटी की भलाई के लिए अपने विचारों में अमूल परिवर्तन कर पुत्री के मंगलमय भविष्य के लिए बेटी विधवा माया को रजपूत युवक विधुर कपिल के साथ अन्तर्जातिय विधवा विवाह को मान्यता देती है। प्राचीन संस्कारों में पली माँ की अवस्था द्विविधा ग्रस्त हो गयी - "एक ही बुढ़िया के अन्दर दो माताएँ थी। दोनों में डटकर संघर्ष हुआ था और आखिर में यह दूसरी माँ ही जीत गयी थी। "[29] बेटी की भलाई के लिए एक माँ का अपने विचारों में इतना परिवर्तन कर लेना वात्सल्यमयी हृदय का ही यह प्रतीक है।

("बलचनमा" की रेबनी एक विधवा संतान और बलचनमा की बहन है। जिस समाज में दुअन्नी के बदले में जवान लड़कियों का तन खरिदा जाता था, उसी समाज में रेबनी की माँ मालिक की बेरहम पिटाई बर्दाश्त करते हुए जमींदारों की वासना से बेटी के शील तथा चरित्र की रक्षा करती है। और बेटी रेबनी का भी अपने पर अत्याचार करनेवाले मालिक का साहस के साथ प्रतिकार करना, दाँतों से काटना निश्चय ही अभिमानास्पद है। विवाह तथा गौने के वक्त माँ-बेटी का गले में गला डालकर रोना परस्पर आत्मीयता तथा स्नेह का भावदर्शन ही है। "पारो" की बाल विधवा पार्वती की माँ

LIBRARY KOLHAPUR

प्रतिभामा ने भी बेटी को लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। माँ के दिल में पुत्री के लिए काफी कुछ करने की इच्छा होने से उसने बेटी के विवाह में ढेढ़ हजार रूपये खर्च कर दिये थे। अपने पैसों से तीस रूपये की बनारसी साड़ी खरीदकर पहनवायी थीं। बेटी के लिए सदा ही कुछ करने का भाव उस में था कि - "मेरी क्या दूसरी-तीसरी बेटी है? न वड़िसाति देखूँगी और न मधुश्रावणी और बेटी को बिदाई कर दूँ।"[30] पार्वती और माँ प्रतिभमा के संबंध्र वात्सल्य और भावुकता के धागे से बँधे है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित अधिकांश माताएँ समाज द्वारा उपेक्षित, प्रताड़ित तथा मजबूर विधवाएँ हैं। वह अपने बेटी की भलाई के लिए अपना सब कुछ त्यागकर उसके भावी कल्याणकारक जीवन के लिए छटपटाती है। बेटियों के लिए उनका समर्पण और परिश्रम आत्मीयतापूर्ण संबंधों का अमर कोश है। प्राय: सभी बेटियाँ भी अनमेल विवाह की शिकार, मालिक के वासना का लक्ष्य तथा विधवापन से त्रस्त है।

बहन - बहन :-

एक ही माँ-बाप की संतान होने के कारण बहिनों के दिल में सहज स्नेह और बराबरी की भावना होती है। "नई पौध" में बहन-बहन संबंध का सुन्दर तथा भावपूर्ण चित्रण हुआ है। संकुचित धार्मिक रूढ़ियाँ, गरीबी तथा पिता के घिनौने स्वार्थ से खोंखा पंडित की पुत्रियाँ नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हो गयी है। अत: वह निम्नवर्ग का जीवन व्यतीत करती है। लोभी तथा निर्लज्ज खोंखा पंडित ने शादी के नाम पर अपनी छ: पुत्रियों को गूंगे-बौड़म, बुढ़े-विधुर पुरूषों को बेचा था। फलत: उन में से चार तो विवाह के बाद तुरन्त ही विधवा हो गयी थीं, एक पगली और एक को आदमखोर पति ने किरासन तेल से जलाकर खाक कर ड़ाला था। विधवा रामेसरी के दिल में अपनी इन सभी बहनों के प्रति प्यार होने से वह मन ही मन दुखी है। बहनों की दुरावस्था से व्यथित "रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी।"[31] रामेसरी का यह विदीर्ण तथा व्यथित हृदय अपनी बहनों के प्रति सहज आत्मीयता और संवेदनपूर्ण आक्रोश की अभिव्यक्ति है।

बहिन - भाई :-

भारतीय समाज तथा परिवार में यह रिश्ता अत्यन्त पवित्र एवं स्नेहासिक्त माना जाता है। भाई-बहिन का सात्विक प्रेम ही भाई को बहिन के प्रति उत्तरदायित्व को सजग करता है। पिता के बाद भाई ही बहिन के भरण-पोषग, शिक्षा, रक्षण, विवाह आदि का भार उठाकर बहिन के सुखी वैवाहिक जीवन की कामना करता है।

नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्ग की दृष्टि से रेबनी और बलचनमा (बलचनमा) का रिश्ता महत्वपूर्ण है। साथ ही गौरी और जयकिशोर (रतिनाथ की चाची), माया और वेणी माधव (दुखमोचन), दिगम्बर और शकुन्तला (नई पौध), बिरजू और अर्पणा (पारो) आदि भाई-बहिन है। बलचनमा के पिता की मृत्यु होने से वह प्रतिकूल परिस्थिति में बहिन रेबनी के शील और चारित्र्य की रक्षा कर उसका विवाह कर देता है। बलचनमा का कथन है - "माँ-बहन, बेटी की इज्जत-आबरू, यही न हम लोगों की दौलत है? तुम्हीं बताओ, हम उनकी भी हिफाजत अगर न कर पावें तो यह जिनगानी किस काम की।"[32] बहिन के शील की रक्षा के लिए वह जान भी कुर्बान करने को तैयार है। गरीबी की मार से मजबूर होते हुए भी वह किसी भी हालत में अपने इस विचार पर दृढ़ ही रहता है कि "मैं नहीं चाहता था कि मेरी बहन के तन पर उन कुत्तों की चंगुल पड़े, मैं नहीं चाहता था कि मेरी माँ अपनी लड़की को आमदनी का जरिया बनाये।"[33] अतः मालिकों की बुरी नजर से बहन को बचाने के लिए वह राधा बाबू से पचास रूपये उधार लाकर रेबनी का जल्दी ही गौना करता है। इससे उसका रेबनी के प्रति प्रेम ही स्पष्ट होता है।

अन्य भाई-बहिनों में जयकिशोर गौरी की गर्भधारणा और गर्भपात को मानवीय कमजोरी समझकर क्षमा करता है, जयमाधव अपनी विधवा बहिन माया को कपिल के साथ विवाह करने को अनुमति देता है। दिगम्बर शकुन्तला के और बिरजू अर्पणा के बाल विवाह को सक्त विरोध करते हैं। सारांश में नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित बहिनें पितृहिन और भाई प्रगतिवादी विचारवाले हैं। भाई-बहिन का यह सम्बन्ध सात्विक प्रेम पर आधारित एवं आदर्श है।

पति - पत्नी :-

नारी जीवन की यात्रा में पत्नी रूप एवं पत्नीपद गरिमायुक्त तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पत्नी पति की सखी, अर्धांगी, पति के व्यक्तित्व में समर्पित होनेवाली नारी है। स्वयं का अस्तित्व भूलकर पति के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानना यह भारतीय पत्नी की परंपरा है। पति-पत्नी का यह संबंध परिवार का आधार है अतः यह रिश्ता सबसे आकर्षक है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित पत्नियाँ प्रायः विधवा तथा अनमेल विवाह की शिकार है। निम्नवर्ग के पति-पत्नी का संबंध एक ओर सहज माधुर्य युक्त तो दूसरी ओर तनाव तथा कटुता भरा दिखाई देता है। बलचनमा अपनी पत्नी सुगनी को मायके के नाम से पुकारता है और सुगनी प्यार से विरोध करते हुए कहती है, "यह मेरा नइहर नहीं है, यहाँ उस नाम से बुलाओगे तो सब मुझे चिढ़ायेंगे।" "तो अकेले में सुगनी कहके बुलाऊँगा, है न मन्जूर?" अब की उसने मुस्कराते होंठों और नाचती नजरों से मंजूरी का इशारा किया।"[34] बलचनमा और सुगनी में कटुता का दर्शन नहीं है।

बलचनमा भी अपनी पत्नी से समाधानी है, पत्नी उसकी हर फरमाईश पुरी करती थी। उसका परिवारिक जीवन संतोषी है।

निम्नवर्ग में पत्नी पति के साथ मेहनत कर अपना, जीवन सुखी बनाती है। सुगनी किसान की बेटी होने से खेतीकाम करना केवल जानती ही नहीं थी, तो प्रसन्नता से करती भी थी। बलचनमा का कथन इस बात को स्पष्ट रुप में व्यक्त करता है - "बहू हो चाहे बेटी, खेत में काम करने जाना पड़गे, पानी भरना होगा, माल-मवेशी चराने होंगे। ---- हमारी औरतें मेहनत-मजूरी का दाना खाती है। अपनी माँ बहनों और बहु बेटियों के हाथ-पैर हमारे यहाँ सिरिफ छूने-मसलने या नाचने-थिरकने का सामान नहीं हुआ करते।"[35] पतिके प्रति प्रेम और पति सेवा का आदर्श रुप 'बलचनमा' में दिखाई देता है। पत्नी सुगनी पति के इन्तजार में बिना भोजन किये रात काफी देर बैठती है।

निम्नवर्ग के पति-पत्नि के बीच कटुता एवं तनावपूर्ण संबंधों का चित्रण भी नागार्जुन ने किया है। जयनाथ का अपनी पत्नी गौरी के साथ व्यवहार अत्यन्त निर्दय तथा रुक्षता का रहा था। मधुरी अपने नशाखोर और बेरहम पति से तंग आकर ससुराल से भाग आती है और कभी वापस न जाने का निश्चय कर कहती है - "अब वह कभी उस नशाखोर बुड्ढे की लात-बात बर्दाश्त करने नहीं, जाएगी ----।"[36] विवाह और पति के बारे में मधुरी के यह विचार क्रान्तिकारी है। उगनी और सिपाही भभीखनसिंह का दाम्पत्य जीवन भी कटु एवं तनावपूर्ण है। वह अपने विवाह को विवाह न समझकर बलात्कार और पति को पति न समझकर घरवाला समझती है। अनमेल विवाह के कारण पति भभीखनसिंह में चाचा, पिता का रुप देखती है। स्पष्ट है कि पति-पत्नी के रिश्ते में तन का नहीं मन का मिलन महत्वपूर्ण है। मनोमिलन के अभाव में टूटन और असामंजस्य ही आता है।

निष्कर्षतः नागार्जुन के उपन्यासों में निम्न-वर्गीय के पति-पत्नी संबंध मधुरता एवं आत्मीयता और कटू एवं तनाव आदि के मिले-जुले धागे ही है।

सास-बहू :

हमारे परिवार की सुख-शांती सास-बहू के संबंध पर आधारित रहती है। आमतौर पर इस संबंध में किसी न किसी कारण तनाव ही रहता है। "सास बहू की लड़ाई का कारण बहू द्वारा काम न करना, काम कम तथा समयपर न करना, परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अपेक्षित शिष्टता का पालन न करना, अनैतिक यौन सम्बन्धों का होना में से कुछ भी हो सकता हैं।"[37] सौभाग्यवश आधुनिक युग के प्रभावस्वरुप बहूओं की स्थिति में काफी सुधार हो चुका हैं। मगर निम्नवर्गीय बहू आज भी अशिक्षित, अज्ञानी, अंधविश्वासी, रुढ़ि एवं परम्परानुगामी होने से सास-ससूर से पीड़ित है।

नागार्जुन के उपन्यासों में सास-बहू के संबंधो का चित्रण दो रुपों में हुआ है - कटु एवं संघर्षपूर्ण और सहज, आत्मीय तथा मधुर रुप में। गौरी और उमानाथ की पत्नी कमलमुखी में तनावपूर्ण तथा झगडालू संबंध है। समाजद्वारा लांछित-उपेक्षित गौर पुत्र का विवाह और पुत्र वधु की कल्पना से आनंदित होती है। लेकिन पुत्र-वधू अपमान, कटु-व्यवहार और सास कीस्वतंत्रता में हस्तक्षेप कर गौरी के दु:खों में वृध्दि ही करती है। गौरी होली के त्यौहार पर पाँच सेर पकवान बनाना चाहती है परन्तु कमलमुखी "मना कर गए हैं "[38] कहकर विरोध करती है। जिस गौरी ने अपना हृदय पतोहू के लिए खोला था उसे ही बहू कमलमुखी पति का अनुकरण कर विदीर्ण करती है।

सहज, आत्मीय एवं मधुर सास-बहू संबंध है सुगनी और उसकी सास, बलचनमा की माँ और उसकी सास में। सुगनी घर का सब काम-काज खुद कर सास को आराम देती है। दोपहर खाना खाने के बाद और रात को सोते समय वह मसली में तेल लेकर सास केपाँव चापती थी। सास भी सुगनी को बहुत मानती थी। बलचनमा का कथन है - "पैसा-कौड़ी खुद नहीं रखती थी। मलिकाइन के यहाँ खाने-पीने की कोई निम्मन चीज-बस्त हाथ लगती तो अकेली कभी नहीं खाती। कनिआ (बहू) बखत पर खाय, बखत पर सोए, मैया को इसका भारी ध्यान रहता।"[39] बलचनमा की माँ और उसकी सास के सम्बन्ध भी इसीतरह सहज और आत्मीय हैं।

निष्कर्ष के तौरपर नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्गीय सास-बहू के रिश्ते का चित्रण सहज और मधुर रुप में ही हुआ है, जो स्वाभाविक भी है। नागार्जुन की दृष्टि प्रगतिशील होने से उपेक्षित वर्ग में परिवारिक संबंध स्थिर और संतोष्जनक होना ही विकास का अनिवार्य संकेत है।

भाभी-ननद :

ननद याने पति की कुमारी या विवाहित बहिन। भारतीय परिवार में यह रिश्ता भी प्राय: कटुतापूर्ण ही रहा है, तथा ननद भाभी से सदा असंतुष्ट ही रही है। प्रसंगवश ननदके दुर्व्यवहार से भाभी की जिन्दगी भी बर्बाद होती है।

नागार्जुन के उपन्यासों मे हमारी दृष्टि से निम्न वर्ग के भाभी-ननद का रिश्ता स्नेह और स्नेह के आदान-प्रदान का ही रहा है। रेबनी और उसकी भाभी सुगनी के बीच ऐसा ही सहज और आत्मीय संबंध है। उनके बीच कही पर दुराव-छिपाव, संघर्ष और कटुता का चिन्ह नहीं है। गौरी और उसकी भाभी जयकिशोर की पत्नी का स्बंध भी स्नेहपूर्ण तथा सहज ही रहा है। सारांश में उपन्यासों मे चित्रित निम्नवर्गीय परिवारोंमे ननद-भाभी संबंध आत्मीयतापूर्ण तथा आदर्श ही अधिक रहा है। उसमें परस्पर स्वार्थ तथा संघर्ष नही है।

प्रेयसी :

प्रेम "प्रिय" का भाववाचक रुप है, जिसका अर्थ है तृप्ति। विद्वानों ने योग-वियोग की वृत्ति को प्रेम कहा है, प्रेम अन्तःकरण की वस्तु है। प्रेम आत्मसमर्पण है, वासना का पर्याय नही। प्रेम हार्दिक तथा एक रस होता है, प्रेम का पर्याय त्याग है। नारी-पुरुष में प्रेम का आकर्षण सहज-स्वाभाविक है। गरीब या अमीर, शिक्षित या अनपढ़ उच्चवर्गीय या निम्नवर्गीय हो, प्रेम के लिए उसकी आत्मा तड़प उठती है।

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी-पुरुष के प्रेम का चित्रण विवाह पूर्व और विवाह के बाद दो रुपों में हुआ है। मंगल और मधुरी का प्रेम विवाह के पूर्व का प्रेम है। यह प्रेम वासना से दूर तथा सहज आत्मीय है। अपने प्रेम के लिए मधुरी मंगल के वैवाहिक जीवन में बाधा डालना नहीं चाहती। मंगल की बहू जब गौना कराकर आनेवाली थी, फिरभी मंगल मधुरीको मिलने के लिए लालायित है तब मधुरी कहती है - "देखो मंगल, मैं तुमसे तीन-चार साल छोटी हूँ। हमने एक-दूसरे पर अपने-अपने प्राण निछावर कर रखे थे लेकिन अब तुम घर की लक्ष्मी का मुखड़ा ध्यान में रमा लो और मुझे भूल जाओ----।"[40] यह प्रेमी कायर बनकर अपने उत्तरदायित्व तथा सामाजिक कर्तव्य से मुँह मोड़ना नही चाहते। मधुरी का भी विवाह पक्का हो गया था। दोनों भी अपने-अपने घरवाले-वाली के प्रति वफादार रहकर समाज और खुद को सुखी एवं संतोषी बानाने में कार्यरत होते है। "मैं तुम्हारा घर बर्बाद नहीं करना चाहती मंगल, मैं नही चाहती कि एक औरत की सिंदूरी माँग पर कालिख पोतती रहूँ ---- ।"[41] यह प्रेम अलन्त पवित्र है, उसमें कर्तव्य की समझदारी होने से कहीं भी छ्ल-कपट या लंपटता नहीं।

उगनी और कमेश्वर का प्रेम विवाह के पूर्व भी और विवाह के बाद भी रहा है जो भारतीय समाज में एक क्रान्तिकारी घटना है। कारण दोनों विधवा और विधुर दशा में अपने प्रेम को विवाह में बदलने के लिए रुढ़िवादी समाज के अत्याचार से तंग आकर भाग जाते समय जेल में जाते है। कालान्तर में धोके से सिपाही भभीखन सिंह की गर्भवती अपनी प्रेमिका को नरकतुल्य जीवन से कामेश्वर मुक्ति देता है। "आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमन्त में सिन्दूर भरा था। धोखेमें ? नहीं, जान-बूझकर। उसके होशो-हवास दुरुस्त थे, विवेक सजग था, आवेग या आवेश चेतना पर हावी नही था। सारी बातें उसे मालूम थी।"[42] हर क्षेत्र में क्रान्ति या परिवर्तन देखनेवाले प्रबध्द लेखक नागार्जुन का प्रेम के क्षेत्र में यह नया कदम उनकी खासियत है। आज तक नारी को अनमोल वचन देनेवाले पुरुष हमने देखें है, लेकिन यह कतई नही सोचा था कि पुरुष भी इतना उदार हो सकता है। निश्चय ही कमेश्वर उपन्यासकार नागार्जुन के नए भारत का नया युवक है, पुराने ढंग का छिछोर नौजवान नहीं।

नागार्जुन के उपन्यासों में अन्य पारिवारिक रिश्ते जैसे चाची-भतीजा, बुआ, मामी और मालिकाइन का चित्रण हुआ है। लेकिन निम्नवर्ग का सामाजिक पक्ष हमारे अध्ययन की सीमा होने से इन रिश्तों का सिर्फ उल्लेख किया गया है। निष्कर्षतः नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्ग के पारिवारिक संबंध प्रायः सहज तथा आत्मीयता पूर्ण ही रहे है। जो भावी स्वस्थ, समाधान कारक समाज निर्मितीका संकल्प तथा आशावाद है। इन संबंधों में कहीं-कही तनाव, घुटन और टूटन भी उग्रता से चित्रित हुई है, जो लेखक के मिथिला और दरभंगा जनपद की भावभूमि पर वास्तव तथा स्वाभाविक लगती है।

निम्नवर्ग की सामाजिक समस्याएँ :

प्रस्तावना :

नागार्जुन प्रगतिशील चेतना सम्पन्न प्रतिबध्द उपन्यासकार है। इसलिए सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते है। उन्होंने मिथिला अंचल की सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार कर युगानुरुप समाधान प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने समाज की वैयक्तिक, सामूहिक, ग्रामीण, नागरी, राजनीतिक एवं आर्थिक सभी प्रकारकी समस्याओं से टकराते हुए किसान-मजदूरोंपर जमीदारों के अत्याचार, सदियों से उपेक्षित-शोषित नारी, उच्च जाति विशेषकर रुढ़िवादी संस्कारों के समर्थक ब्राह्मणों की खोखली मान्यताओं और नैतिकताओं पर तीखे प्रहार किये हैं। लेकिन वे मिथिला जनपद का समाज जिन समस्याओं के कारण पिछड़ा हुआ है उन नारीविषयक याने अनमेल विवाह, वैधव्य-जीवन और विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति, बहु पत्नी प्रथा, नारी विक्रय और कुलीनता आदि समस्याओं पर गहराई से चिन्तन -मनन करते हुए यथार्थ समाधान भी प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं। यहाँ हम नागर्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग की सामाजिक समस्याओं का उहापोह कर रहे हैं।

अनमेल विवाह :

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक सामाजिक बुराई है। रुढ़ियाँ, अंधाविश्वास, अशिक्षा और आर्थिक विषमता ही अनमेल विवाह का कारण है। परिणामतः नारी अपने से अधिक उम्र के पुरुष के साथ जबरदस्ती बाँध दी जाती है। अनमेल विवाह का दुष्परिणाम या तो वैधव्य प्राप्ति या फिर किसी नवयुवक के साथ भाग जाने में होता है नहीं तो घर में ही व्यभिचारिणी बनकर अपमान का जीवन जिती रहती है। "उग्रतारा" की उगनी न चाहने पर भी पचास साल के अधेड़ सिपाही भभीखनसिंह की घरवाली बनती है। इस विवाह को वह बलात्कार का रुप ही मानती है जैसे "सिपाही जी में उगनी को "घरवाला" तो जरुर मिल रहा था, पति नहीं मिल रहा था।"[43] अतः वह अपने

पूर्व प्रेमी असवर्ण जाति के कामेश्वर के साथ अंतर्जातीय विवाह करती है।

हमारे समाज में बचपन से औरतों को शिक्षा दी जाती है कि पति कैसा भी क्यों न हो वह परमेश्वर है। लेकिन उपन्यासकार की राय है कि अधेड़ या प्रौढ़ पुरुष रुपी परमेश्वर के साथ शादी सामंजस्य नहीं तो बलात्कार का रुप है। "जोर-जबरदस्ती कोई किसी के शरीर पर ही कर सकता है, मन पर कतई नहीं। आप ही कहिये जहाँ पैंतालिस वर्ष के वर की पत्नी पंद्रह साल की होती हो, वहाँ सौमनस्य कैसे सम्भव है?"[44] वास्तव में पति-पत्नी के जीवन में शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भी समानता और सार्थकता जरुरी है, नहीं तो अनमेल विवाह की परिनिती असामायिक मृत्यु में होती है। अनमेल विवाह की शिकार पारो यातना असह्य होने से भगवान का पुकार करती है - "लाख दण्ड दें मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दें।"[45]

निष्कर्ष के तौर पर हम कहते है कि नागार्जुन ने अनमेल विवाह की कुप्रथा से नारी की जो दारुण दशा होती है उसका हृदय-विदारक चित्रण कर पाठकों के हृदय में संवेदना जाग्रत की है। इस प्रथा को रोकने के लिए अंतर्जातीय विवाह का समर्थन कर नई पौध के रुप में युवा शक्ति को चुनौती भी दी है।

विधवा समस्या और विधवा विवाह :

नारी का विधवापन भारतीय समाज का अभिशाप है। परंपरावादी समाज विधवा नारी को हेय मानकर उसके साथ सहानुभूति न दिखाकर निर्ममता से आचरण करता है। अतः भारतीय समाज में अछूत वर्ग से भी अधिक यह विधवा वर्ग ही पीड़ित रहा है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में अपमानित और यातनापूर्ण जीवन जीने वाली विधवा नरियोंका यथार्थ चित्रण किया है कारण स्वयं नागार्जुन प्रत्यक्ष द्रष्टा के रुप में विधवाओं के तिरस्कृत और असह्य जीवन के सहभागी रहे हैं।

नागार्जुन की राय है कि दरिद्र कुल में या प्रौढ़ वर के साथ लड़की ब्याहने से ही यह भयानक आपत्ति आती है। गौरी का वैधव्य "दरिद्र-कुल में लड़की ब्याहने का ही दुष्परिणाम था।" विधवा के साथ नारी जितनी क्रूर और कठोर होती है उतना पुरुष भी नही हो सकता। दमयंती स्वयं विधवापन का अभिशाप भुगत रही थी फिर भी वह गौरी के सामाजिक बहिष्कार का प्रस्ताव रखती है - "उमानाथ की माँ व्याभिचारिणी है, पतिता है, भ्रष्टा है, कुलटा है, छिनाल है, उससे हमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। बोल-चाल बन्द। बात-विचार बन्द। प्रत्येक विचार बन्द। ----- उमानाथ की माँ को समाज किसी भी हालत में क्षमा नहीं कर सकता।"[46] विधवा जीवन इतना करुणाजनक होता है कि समाज में विधवा माताओं के खिलाफ उसके बच्चों को भी उकसाया जाता है। उमानाथ आवेश में आकर गौरी को लातें मारता है और जीवन-भर माँ का तिरस्कार करता है।

विधवा स्त्री को बाल-बच्चों को संभलने के लिए बेबस होकर मालिकों का आश्रय लेना पड़ता है, गालियाँ सुननी पड़ती है, मार खानी पड़ती है। बलचनमा की माँ और दादी को विधवावस्था में अपनी छोटे बच्चे को मालिक काचरवाहा बनाना पड़ता है। मालिक बलचनमा की विधवा माँ पर जुल्म करता है - "बोल साली, अपनी बेटी को यहाँ ले आएगी कि नहीं? बोल"[47] कई विधवा स्त्रियाँ अपने शील का रक्षण कर साध्वी जैसा जीवन व्यतीत करती है यह भी नागार्जुन ने स्पष्ट किया है। हिन्दू विधवा को मृत्यु के सिवा इस मरणप्राय जीवन से मुक्ति नहीं है। ऐसी उच्च जाति को काशी में रहनेवाली सुशीला नामक विधवा मुर्दा धार कहती है। समाज ही विधवाओं की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार है। स्वार्थी पुरुष वर्ग पर कठोर आघात करती हुई सुशीला कहती है, "मेरे जितने मित्र बनते हैं, उतनी बार मैं चूड़ियाँ पहनती हूँ, और फोडती हूँ।"[48] असहाय विधवा नारी पुरुष का साथ चाहती है परन्तु पुरुष की नजर उसके शरीर तक ही रहती है।

विधवा जीवन के बारे में नागार्जुन जानते है कि समाज बेसहारा गरीबों को दबाता है, अमीरों को नहीं। बलि बकरे की दी जाती है बाघ और भालू की नहीं। साथही जिस समाज में अधिक विधवाएँ रहेंगी, उस समाज में अनैतिकता, व्यभिचार, किसी के साथ भाग जाना सहज स्वाभाविक होता है।

विधवा समस्याकी इस कुप्रथा का रचनात्मक, प्रगतिशील समाधान नागार्जुन पुनर्विवाह और अन्तर्जातीय विवाह में खोजते है। इस उपाय को उच्च वर्णीय लोग "राम राम घोर कलियुग आ गया" कहकर विरोध करते है, लेकिन निम्नवर्ग के लोगों की मानसिकता इसके लिए तैयार रहती है। विधवा माया और विधुर कपिल के पुनर्विवाह के संदर्भ में निम्न वर्ग के लोग सोचते है "यह ठीक ही हुआ था ---- विधवा लड़की ने रँडुआ लड़के से सम्बन्ध कर लिया तो क्या बुरा किया? इधर-उधर भटकती और भरस्ट होती तो गांव-कुल का नाम डुबाती --- वह अच्छा होता कि यह अच्छा हुआ?"[49] जिस के खानदान की कई पीढ़ियाँ वैधव्य का लम्बा अभिशाप भूगत रही थी वह उगनी कामेश्वर के साथ पुनर्विवाह कर परिवार पर के वैधव्य जीवन के अभिशाप को खत्म करती है, और स्वयं नारकीय जीवन से मुक्ति पाती है।

सारांश में यह स्पष्ट है कि नागार्जुन विधवा समस्या का सही समाधान पुनर्विवाह से करते है। जिस पुनर्विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह को रुढ़िग्रस्त लोग धर्म संकट मानते थे, फिर भी उपन्यासकार ने ऐसे विवाह संपन्न कर समाज को एक चुनौती दी है जो नागार्जुन की परिवर्तित युग की चेतना का ही परिणाम है।

वेश्या समस्या :

भारतीय समाज में वेश्यावृति प्राचीन काल से ही है। "ऋग्वेद" में वेश्या का उल्लेख है। अप्सरायें स्वर्ग की वेश्याएँ हैं। धर्मसूत्रों और स्मृति ग्रंथो में वेश्याओं के विषय में पर्याप्त विवेचन उपलब्ध है। आदियुग से लेकर आज तक वेश्यावृति का मूल कारण आर्थिक ही रहा है। "भारतीय समाज में कभी धर्म, कभी नैतिकता और कभी सामाजिक मूल्यों की आड़ में अनवरत शोषण का सब से घृणित और बीभत्स रुप वेश्यावृति है।"[50] वर्तमान वेश्यावृति का संबंध पूँजीवादी समाज व्यवस्था के चारित्रिक और नैतिक पतन के साथ भी जुड़ा है।

नागार्जुन ने वेश्याओं के जीवन का यथार्थ चित्रण "कुंभीपाक" उपन्यास में किया है। उन्होंने समाज में चलनेवाले इन वेश्यालयों को "कुंभीपाक" नरक के समान माना है। हमारे समाज के प्रतिष्ठित लोगों या कभी-कभी आप्तजनों द्वारा दी गयी यातनाएँ नारी को अनचाहे वेश्यावृति के कुंभीपाक नरक में ढ़केल देती है। वहाँ इन अभागिनों को अपने रुप और मांस का व्यापार कर रौव-रौव का जीवन जिना पड़ता है। भुवन तथा चम्पा समाज नायको तथा गुण्डों के कुकर्मों की शिकार है, जिनका यौवन बार-बार लुटा गया है और उन्हें वेश्या बनने के लिए विवश किया गया है। इस नरकतुल्य जीवन से छुटकारा पाने के लिए भुवन तथा चम्पा जैसी युवतियाँ छटपटाती है। चम्पा बताती है - जीजा ने मुझे कुलसुम, सरदार जी ने सतवन्त कौर और शर्माजी ने चम्पा बनाया---- "अब मैं जिन्दगी भर चम्पा ही रहूँगी या फिर यह नाम बदलना पड़ेगा।"[51] चम्पा का जीवन इतना करुणा जनक है कि उसे अनेक पुरुषों के साथ निभाना पड़ा है, अतः वह अपने को विधवा मानने के लिए तैयार नहीं। किसी पुरुष का आश्रय चाहनेवाला उसका नारी सुलभ हृदय धोखा ही खा गया है। अतः चम्पा को अपनी शारीरिक और सामाजिक बर्बादी पर खेद है - " ----- कभी इन रगों में भी ताजा खून दौड़ता था, अब तो बस दुर्गन्ध और बासा पानी भर गया हैं इनमें, - उस हुक्के का पानी जिससें कई होंठ अघा गये हो।"[52] चम्पा को पछतावा हो गया है अतः वह इस जीवन से मुक्त होकर बाहर आना चाहती है लेकिन पुरुषी धोके के कारण उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। लेकिन एक नारी की सहायता से भुवन छुटकारा पाती है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में इस कुंभीपाक से छुटकारा पाने के लिए श्रमनिष्ठ जीवन का मार्ग बताकर उचित और वैज्ञानिक समाधान किया है। उन्होंने वेश्या समस्या का हल करने में आश्रम की स्थापना न कर श्रमकेन्द्र में विश्वास व्यक्त किया है। कारण आश्रम की वास्तविकता चम्पा के द्वारा लेखने स्पष्ट की है जो अनैतिकता और स्वार्थ के अड्डे-अखाडे बन गये हैं। नागार्जुन जान गये थे कि वेश्या समस्याका मूल कारण आर्थिक अभाव है, इस से छुटकारा पाने के लिए आत्मनिर्भर होना ही

आवश्यक है। अतः उनकी प्रगतिशील चेतना गृह शिल्प-कुटीर की स्थापना करती है। शिल्प-कुटीर में अचार, मुरब्बे, पापड़, बडियाँ, बेल-बूटे, झालर, रुमाल, मेजपोश, मोजे, स्वेटर आदि बेचकर श्रमनिष्ठ, सन्माननीय, स्वावलंबी जीवन व्यतीत कर सकती है।

निष्कर्ष में नागार्जुन स्त्री को आत्मनिर्भर कर वेश्यावृति तथा पराधनिता से मुक्त करना चाहते हैं। आत्मनिर्भरता अर्थ पर आधारित होती है और श्रम ही अर्थ का वैज्ञानिक उचित मार्ग है। आर्थिक लाचारी तथा दरिद्रता दूर होने से ही नारी वेश्यालयों की ओर जाने को मजबूर नहीं होगी। वेश्या समस्या का यह समाधान निश्चित रुप से साहसी लेकिन वास्तव है।

जाति भेद एवं छुआछूत :

वैदिक युग में वर्ण-व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था। यह वर्ण व्यवस्था कर्मों पर नहीं जन्म-जाति पर आधारित रही है। इसी वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण समाज उच्च समझा जाकर उसके हाथ में धर्म की लगाम रहती थी। लेकिन धर्म का यह ठेकेदार वर्ग रुढ़ियों और अंधविश्वासों की आड़ में अन्यवर्गों का शोषण कर स्वयं पतित एवं भ्रष्ट हो गया है। समाज की सर्वाधिक सेवा करनेवाला वर्ग अछूत समझकर उसे सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अधिकारों से वंचित कर उसका मंदिर प्रवेश, देव दर्शन और स्पर्शतक वर्ज्य माना गया।

नागार्जुन के उपन्यास "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "अभिनन्दन", और "जमनिया का बाबा" में जातिवाद के विभिन्न पहलुओंका चित्रण यथार्थ स्तर पर हुआ है। शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का, धर्म मंत्र के पठन-पाठन का कोई अधिकार नहीं था। कुल्ली राउत चुपके से कई स्त्रोत्र, जनेऊ का मंत्र और गायत्री मंत्र सीख लेता है। इसका पता जब जयनाथ को चलता है तो वह क्रोध से आगबबूला होता है, "साले की चमड़ी उधेड़ लूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।"[53] लेखक का विश्वास है कि यदि निम्न जाति के लोगों को सामाजिक सम्मान, शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार मिला होता तो वे भी पढ़-लिखकर समाज में अपनी अच्छी स्थिति प्राप्त कर लेते। कुल्ली राउत के बारे में रतिनाथ ठीक यही सोचता है कि "अगर यह भी ब्राहमण के घर में पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे-पुराने कपड़े न होते। हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे पलते हैं। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत-इन लोगों का जीवन बड़ी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर है।"[54] इसी तरह शिक्षा ही निम्नवर्ग पर होनेवाले अत्याचार और आर्थिक शोषण रोकने का प्रधान मार्ग है।

भारतीय समाज में ब्राहमण जाति का वर्चस्व रहा है। बलचनमा अपने अतीत के बारे में बताता है कि "हमारे गाँव में पंडितों का बड़ा दबदबा था। मैथिल ब्राहमण छोटी जातिवालों का छुआ

भोजन भी नहीं खाते। "तिरहुतिया बाभन बड़े खटकर्मी होते हैं। छोटी जातिवालों का छुआ नहीं खायेंगे।"[55] निम्नजाति वालों को हाट-बजार जाकर नाई से दाढ़ी बनवाना, बाल छंटवाना भी मुश्किल था। बलचनमा मानता है कि ऊँच-नीच का यह भेद सदा से चला आया है, यह पुरानी व्याधी आसानी से मिटनेवाली नहीं है। आज के राजकीय नेता जातिको बनाए रखने की कोशिश करते है, कारण उन्हें जाति के आधार पर वोट और सत्ता प्राप्त होती है। हरिजनों के नेता भी शायद इस काम में कामयाब नहीं होंगे, कारण वे भी पराजित मनोवृति से ग्रस्त रहे हैं। "अभिनंदन" के हरिजन विधायक बुझावन राम को लगता है कि "मैं विधान सभा में आखिर किसका प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ? उन भूमिहीन अछूतों के हित में तो मैं आज तक अपना मुँह नहीं खोल सका हूँ। ऊँची जात वालों की "हाँ", मैं "हाँ" मिलाना ही मेरा खास काम रहा है। दल-विशेष ने मुझे खरीद लिया है, शोषक वर्गों की जी-हूजरी और उनका ही हित-साधन मेरे इस जीवन का परम उद्देश्य है..... जब तक मेरे जैसे नकली प्रतिनिधि बाबू लोगों के पीछे दूम हिलाते रहेंगे तब तक गरीब अछूतों की दुर्दशा में नाम-मात्र भी सुधार नहीं होगा।"[56] ऊँची जात वाले नेता हरिजनों की सेवा के ढोंग में अपना उल्लू सीधा करते है। हरिजनों के नाम पर सेवा मण्डल, छात्रावास, आश्रम आदि विकास संस्थाएँ स्थापित तो करते है लेकिन उसके द्वारा हित नेताओंका या तो सवर्णोंका होता है। "हरिजनों की सेवा के नामपर ऊँची जाति के धूर्त लोग सरकार को ठग रहे हैं, करोडों की रक्कम खा-पका गये हैं ......।"[57]

हरिजनों पर अत्याचार और गुंडों के द्वारा पिटाई तो आए दिन होते हैं और अपराधी बेदाग छूट जाते हैं। श्रम और ईमानदारी इनका वैशिष्टय होते हुए भी शोषण और अन्याय उनपर ही होता है। अतः नागार्जुन ने उच्च जाति के लोगों को अवाहन किया है कि मानवीय संवेदना और सहानुभूति से ही यह भेद मिट सकता है। अन्यथा भेद - भाव से सामाजिक असंतोष को बढ़ावा मिलता है। और हरिजन धर्म- परिवर्तन करके इसाई या मुसलमान होकर अपना खोया हुआ सम्मान पाने को मजबूर होते है। इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते है कि अछूत कोई नहीं है। स्नानादि से स्वच्छ होने के बाद सब अच्छे है। मस्तराम कहता है कि "महेतर भी सफाई का काम कर चुकने पर नहा-धो ले, कपड़े बदल ले, फिर हमारे साथ बैठकर वह पूजा-पाठ में क्यों नहीं शामिल होगा? आत्मा तो एक ही है, शरीर का चोला अलग-अलग हो सकता है।"[58] अतः चमार बौधू चौधरी भी राष्ट्रीय ध्वजा रोहण करता है।

निष्कर्षतः हम कहते है कि नागार्जुन के दिल में अछूतों के प्रति अमर्याद सहानुभूति है। अतःउन्होंने आजन्म ब्राहमण बिरादरी से कभी समझौता नहीं किया है। सामाजिक समता और प्रगति के लिए जातिभेद की भावना एक अड़सर है। सिर्फ कानून बनाने से समस्या का समाधान नहीं निकलेगा अतःउस के लिए मानवीय सहानुभूति और आत्मपरिक्षण की आवश्यकता है।

मजदूर - किसान :

भावुक साहित्यकार एवं उपन्यासकार नागार्जुन का सीधा संबंध निम्नवर्ग और निम्न मध्य वर्ग से रहा है।

किसान या काश्तकार वे है जो स्वयं खेती कर अपने परिवार के लिए पर्याप्त उत्पादन कर लेते हैं लेकिन कोई मजदूर लगाने की स्थिति नहीं होती। मजदूर वे हैं जो तनखा या अनाज के बदले दूसरों की जमीन पर काम करते हैं। कभी-कभी उनको जमीन का छोटा टुकड़ा भी मिल जाता है जो उनके जीवन यापन के लिए पर्याप्त नहीं होता। नागार्जुन की सहानुभूति इन शोषित, पीड़ित श्रमजीवी किसान-मजदूरों के साथ हमेशा रही है कारण उनकी प्रगतिशील चेतना ने अपने गाँव के सामन्त-जमींदार, सूदखोर महाजनों के द्वारा किसान-मजदूर पर किए गए अत्याचारों और अन्याय को प्रत्यक्ष रुप में देखा हैं, वे स्वयं इस शोषण से पीड़ित है।

मजदूर :

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित खेतिहर मजदूरों की मजबूरी तथा दुर्दशा इतनी है कि उन्हें मालिकों की जूठन खाकर ही बड़ा होना पड़ा है। बलचनमा की दादी उसको बाप की हत्या करनेवाले मालिक के घर ले जाकर मलिकाइन से हाथ जोड़कर कहती है, 'आप ही का तो आसरा है, नहीं तो हम गरीब जनमते ही बच्चों को नमक न चटा दें। अरे, अपना जूठन खिलाकर, अपना फेरन-फारन पहनाकर ही तो हमारा पर्तपाल करती हैं....। आज से आप ही इस निभागे की माँ-बाँप हुई गिरहथनी। आपका जूठन खाकर इसका भाग चमकेगा ----।'[59] अच्छा भोजन तो जुठन में ही खाने का भाग्य इनका है। सूखा या बासा पकवान, सड़ा आम, फटा बदबूदार दूध या जूठन की बची हुई कड़वी तरकारी खाना पड़ती है। जूठन खाना और माँ-दादी के द्वारा आम की गुठलियों को चूर-चूर कर फाँकना आदि करूणाजनक है। कुल्ली राऊत भी अपने वर्ग के लोगों की तरह जूठन खाकर ही बड़ा हुआ है।

कपड़े का अभाव भी मजदूरों की एक मुसबित है। फटे-पुराने कपड़े तथा मलिकों की पहिरन भी भाग्य में नहीं होती। जाड़े के दिनों का बलचनमा का अनुभव है कि - 'गुदड़ी-कथड़ी भी ओढ़ने को अगर काफी न हो तो पूस-माघ की टण्डी राम यमराज की बहन साबित होती है।---- सूखी मीगणियाँ ताप-तपाकर हम रात कटाते।'[60] खुरखुन के घर की हालत भी ऐसी थी कि उसके बच्चों के शरीर पर कपड़े के नाम पर कथरी-गुदड़ी के दो-तीन छोटे-बड़े टुकडे ही थे।

इन मजदूरों को स्कूल जानेका अवसर न मिलने से अनपढ़ ही है। अतः उनका शोषण जमींदारो और साहूकारों से होता हैं। कुल्ली राउत के बच्चे को, बलचनमा को स्कूल जाने का

मौका नहीं मिला। बलचनमा की मलिकाइन नहीं चाहती थी कि वह पढ़े या बाँचे। वह सोचती है - "असल मुसीबत यह होती है कि पढ़-लिखकर नौकर बटलोई रगडने को नहीं बैठेगा।" मजदूरों का जीवन बड़ी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर रहता है। मजदूरों को निम्न दर्जा के घिनौने काम करने पडते है। बलचनमा को भैंस चराने के साथ बच्चे को खिलाना, पानी भरना, झाडू लगाना, दुकान से तेल मसाला लाना और मलिकाइन के पैर चाँपना आदि काम करने पड़ते थे। लकड़ी फोड़ना, कपड़े छानना, पंखा झलना, डोली खिंचना, मेहमान की मालिश, मालिक के चूतड़ पर मुक्किया लगाना आदि काम मजदूरों से जबरदस्ती कर लिए जाते है। कलमुँहा, कोढ़िया, कुत्ता, सुअर आदि गालिया सुनने को मिलती और मालिक-मलिकाइन द्वारा झाडू-जूतों से बूरी तरह पीटाई भी होती है। "मेरी हड्डी-हड्डी, नस-नस और रोएँ-रोएँ पर उनका मौरूसी हक था। पालने-पोसने, सडाने-गलाने और मारने-पीटने का भी उन्हें पूरा हक था।"[61]

एक नौकर का दूसरे नौकर के साथ भद्दा बर्ताव रहता था। उनमें आपस में सहानुभूति तथा एकता का अभाव ही रहता है। एक नौकर दूसरे नौकर को घिचिर-पिचिर सुनाता रहता है। उनमें छोटी-मोटी बातोंपर झगड़ा हाता है, गुस्सा, गाली-गलौज करते है। बलचनमा का मामा कहार से कहता है "खच्चर कहीं के! छोटी जात वालों की अकिल भी छोटी ही होती है।" सूरती फाँकना, खैनी खाना, हुक्का-बीड़ी पीना इनकी सामान्य आदतें रहती है।

नागार्जुन के मजदूरों का कमाऊपन, ईमानदारी और स्वाभिमान भूषण-वैभव है। "दुखमोचन" में हरखू माँ गरीब होते हुए भी ईमानदार है। बाढ़ पीड़ितो के लिए इकट्ठे किये गए अनाज को लेकर फिर वह वापस कर देती है क्योंकि उसके बेटे ने पचीस रुपये का मनीऑर्डर आज भेज दिया है अतः कहती है "अब इस वक्त मैं झूठ कैसे कहूँ कि हमारे घर में कुछ नहीं है। पच्चीस रुपया है हाथ पर, दो-पोने दो मन गेहूँ हुआ सरकार! तो झूठ-मूठ मैं कैसे कहूँ कि छटाँक-भर भी दाना नहीं है घर में।"[62] मन लगाकर अधिक काम करने में बलचनमा की कीर्ति है। तेली का बैल कहकर लोग जब उसे ताने मारते है तब उसका मनोगत है "अच्छा भाई, मैं बैल ही सही, गधा ही सही। बेईमान तो नहीं हूँ, काम चोर तो नहीं हूँ, कोढ़ी तो नहीं हूँ। ---- काम करते बखत मैं किसी भी किसिम की विचिर-फिचिर या ढ़िलाई का कायल नहीं था। जिस मुस्तैदी से अपना काम करता उसी मुस्तैदी से दूसरे का भी।" बलचनमा स्वाभिमानी होने के कारण ही मजूरी में कोई खराब अनाज देता तो तुरन्त वापस करता था। किसी की गालियाँ बर्दाश्त करना या झूठ-मूठ की जी-हूजरी करना वह नहीं चाहता था।

खेत मजदूरों तथा चखाहों के दिल में जानवरों के प्रति अपार दया है। वे जानवरों की

सेवा सगी सन्तान की तरह करते है। उनकी सेवा-सुश्रूषा करना मजदूर सत्कर्म समझते है। सबूरी मंडल और बलचनमा अपनी भैंस को कभी पीटते नहीं थे, जानवरों के रहने की जगह साफ और सूखी रखते थे, कीड़े-कुकुरमाछी से जानवर की रक्षा करते है। मिसराइन के बैल की मरनासन्न अवस्था देखी न जाने से व्याकुल-करूण बलचनमा खाचिया भर घास दूसरे के बैल को खिलाकर कहता है, "नहीं बेटा, मैं तुम्हें इस तरह मरने नहीं दूँगा।.... आज से मैं तेरा और तू मेरा।"[63]

निष्पाप एवं निर्दोष मजदूरों पर जमींदारों द्वारा अत्याचार और अन्याय करना आए दिन की सामान्य घटनाएँ है। "बलचनमा के पिता का यही कसूर था कि वह जमीदार के बगीचे से एक कच्चा आम तोड़कर खा गया। और इस आम के लिए उसे अपनी जान गवाँनी पड़ गयी।" सूदखोर साहूकारों के अन्याय और मालगुजारी का बहाना बनाकर जमीदारों द्वारा रैयतों की जमीन हड़पाई जाती थी। जो मजदूर इस अन्याय का विरोध करने का प्रयत्न करते थें तो जमींदार की शह पाकर पुलिसवाले उन्हें तरह-तरह के मुकदमों में फँसाते थे। मालिकों के लठैतों और जमीदारों के कारिन्दे निर्दयता से मजदूरों को पीटते थे। बेगुनाह बलचनमा भी जमींदार खान बहादूर के गुण्डों की अमानवीयता का शिकार बनता है, "पहले ने अब मेरे सिर पर जोर से लाठी मारी... एक नहीं दो बार... मैं बेहोश होकर जमीन पर लुढ़क गया।"[64] छोटी औकात और नीची जात के लोगों को जमीदार कीडे-मकौड़े के समान नाक रगड़ने के लिए मजबूर करते थे। रूपउली के गरीब-चमार की हत्या पाठक और जैननारायण ने करवाई थी।

मजदूरों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी शोषण होने से गरीबी और दुर्दशा के साथ लाचारी भी उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है। उन्हें तनखा कम मिलती और कडी मेहनत करनी पड़ती है। बलचनमा से इतना काम लिया जाता था कि उसे खाने और सोने का भी अवकाश नहीं मिलता था। उसके तीन पुरखे मालिकों के लिए जिए और मालिकों के लिए ही मरे हैं। वंश परम्परा से दासत्व करते-करते स्वभाव में भी दासता आने से अत्याचार सहने की आदत-सी पड़ी है। यह दासता और आर्थिक विवशता उन्हें खुशामदी बनाती है। उसे दिन में पचास-पचास बार मालिक-मालिक, सरकार-सरकार, हुजूर-हुजूर कहना पड़ता। मजदूर मीर्च अधिक खाते है और रात को जल्दी सोते है। इनके विवाह-गौना में शाहखर्ची नहीं होती तो सादगी होती है। कारण यह मजदूर सदा ही ऋण में रहते है। बलचनमा के पिता के मरने पर लिए गए रु. 12 के कर्ज पर सूद भरते-भरते दादी मर गई पर मूल ज्यों का त्यों ही रहा है।

मजूदरों के दिल में खेती और कामों के प्रति ममत्व है। धान-कटाई के दिनों में मालिक की अपेक्षा नौकरों को ही अधिक आनंद होता है। धान रोपने के मौसम में बलचनमा दो-दो मजदूरों का काम करता था। अर्थात् निम्न जाति के लोग ही मजदूरी करने के लिए विवश हो जाते है। मजदूर रूपलवा धानुक, छठुआ मलाह, मंगल पासी और बलचनमा ग्वाला जैसे उपेक्षित वर्ग के प्रतिनिधि

है। दुर्भाग्य यह है कि इन मजदूरों के दिल में अन्याय करने वाले मालिकों के प्रति सहिष्णुता की भावना है। बलचनमा की माँ और दूसरी छोटी जाति की औरतें मालिक को राजा तथा भगवान का अवतार समझती है।

निष्कर्ष यह है कि नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित मजदूर वर्ग ईमानदारी, सहनशीलता, परिश्रमी तथा भावुकता आदि मानवीय गुणों से युक्त है। लेकिन गरीबी, अशिक्षा, शोषण तथा अंधश्रध्दा के कारण उनका जीवन जानवरों से भी गया-बिता हो गया है। अन्याय और अत्याचार के खिलाफ उसके मन में आक्रोश तथा विद्रोह का भाव छिपा है। आतंक तथा दबाव के सामने वह अकेले में संघर्ष नहीं कर सकता कारण उसमें एकता तथा संगठन का अभाव है। अज्ञान तथा अंधश्रध्दा के कारण वह अर्थाभाव की खाई में गिरता रहता है। अतः आर्थिक सुविधा और उसके लिए स्वावलम्बन तथा शिक्षा के अवसर उपलब्ध होने की जरुरत है।

किसान :

जिस देश की नब्बे प्रतिशत जनता कृषक वर्ग की है जो नित नये जीवन संघर्ष से सामना करते हुए प्रकृति के प्रकोपों को सहन करती है, और जमींदारी प्रथा तथा शोषण से व्याकुल है उस धरती के लालों की वेदना नागार्जुन के उपन्यासों में अभिव्यक्त हो गयी है। नागार्जुन के उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व का कृषक जीवन चित्रित हुआ है। खून-पसीने को एक करके मिट्टी से सोना उगलने वाला किसान जो स्वयं अन्नदाता है। वह मुठ्ठीभर अनाज के अभाव में निष्क्रिय और निर्जीव होकर छटपटा रहा है उनकी दुर्दशा का प्रभाव एक जागरुक कलाकार के नाते नागार्जुन के हृदय पर पड़ा है। जमींदारो के शोषण और अत्याचारों की घटनाओं ने बिहार के किसान आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले लेखक के भावूक हृदय को झकझोर ही दिया है। असली भारत जो गाँवों में है, जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त है, मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित है उसे ही प्रकट करने का यत्न नागार्जुन का रहा है।

भारतीय किसानों के चार बड़े दुश्मन है एक है जनविरोधी राजनेता, दूसरा है घुसखोर भ्रष्ट अधिकारी, तिसरा है सामंत और चौथा है अकाल या बाढ़। यह सब बारी-बारी से तो कभी-कभी मिलकर उसे पीटते रहते है। अकाल के दिनों में तो इन किसानों को रोटी मिलना ही दूभर होता है। "खेत-मजदूर और जन बनिहार आम की सूखी गुठलियाँ चूर-चूरकर मडुआ का जरा-सा आटा उसमें मिलाकर टिक्कड़ बनाते और उसी से भूख की आँच को शान्त करते।"[65] इतनाही नहीं तो प्रकृति के इस भयानक प्रकोप में ईंट का चूरन और पेड़ की पत्तियाँ और जड़े खाने की मुसीबत आती हैं। इस भूख की जलन में भावना मरती तथा आँसू भी गायब होते है। भूख मरी की व्यापक स्थिति में किसान

का जीवन जिन्दा लाश की तरह बन गया है। लेकिन नागार्जुन निराशावादी नहीं है।

मजदूरी ही अधिकांश किसानों के रोटी का साधन था। रुपउली गाव के साठ प्रतिशत लोगों का गुजारा मजदूरी पर होने से वे काम के लिए पड़ोस के गाँवों में जाते, शहरों में कुलीगिरी कर अपने परिवारों की जीविका चलाते थे। हमारे किसानों में पीढ़ीगत अंधश्रध्दा मौजूद है, इसका कारण अशिक्षा तथा आर्थिक विपन्नता ही है। जैकिशुन के परदादा की गुजराती नस्ल की भैंस बीमार पड़ गयी। हर कोशिश करने से भी उसका हाल नही सुधरा तो बाबा बालेश्वरनाथ की मनौती करते है। भैंस के ठीकहोने के कारण हर सोमवार को वे बालेश्वरनाथ पर जल ढ़ारते रहते है। संतान प्राप्ति के लिए तंत्र-मंत्र तथा पंडितों की सेवा-पूजा कर दार-दक्षिणा देते हैं। शुभाशुभ बातोंपर विश्वास होता है। बटेसरनाथ का बिरवा भी जैकिशुन के परदादा ने पूजा-अर्चाके साथ शुभ-मुहूर्त पर रोपा था। बरसात के लिए रुपउली गाँव के ग्वालों, अहीरों और धानुकों ने भुईंयाँ महाराज का पूजन, बकरे की बलि तथा भाव खेलकर इंद्र की आरधना की, औरतों ने मेंढ़क ओखलियों में मूसलों से कुचलकर वरुण की पूजा की है। मनोरथ पूर्ण होने पर मनौतियाँ चढ़ाने की भी श्रध्दा है इन किसानों में।

किसानों को कर्ज वापस देना मुश्कील होने से निरुपाय होकर जमीन गिरवी रखना या बेचनी पड़ती है। शत्रूमर्दन राय को राज बहादूर के चालीस रुपये के कर्ज के लिए अपनी जमीन कबाला करने की हाथ जोड़कर बिनती करनी पड़ी है - 'हुजूर। गरीबनेवाज। उतनी रक्कम के बदले जमीन कबाला करा लीजिए। दुहाई सरकार की। या, फिर, दो महीने की मुहलत मिले ---।' जमीदार-साहूकारों के अमानवीय अत्याचारों का शिकार किसान कर्ज के लिए गुण्डों द्वारा पिटा जाता था। शत्रूमर्दन रायके हाथ माथे के उपर सिपाहो ने बाँधे और बिलबिलाते लाल चींटों वाली हँाडी माथे पर उड़ेंल दी। माथा हिलाने से पीठ पर भोजपुरिया जमादार द्वारा कोड़े बरसाये गये। लेकिन यह किसान गरीब होते हुए भी स्वाभिमानी है। बलिभद्दर शत्रूमर्दन राय से नाक रगड़वाना चाहता था, माफी मंगवाना चाहता था लेकिन वे अपने शरीर को लाल चींटों से बिंधवाते रहे, चुभन व जलन पचाते रहे, कोड़े खाते-खाते बेहोश होकर गिर पडे फिरभी लाचारी तथा पराभव स्वीकार नहीं किया। नागार्जुन के उपन्यासों में सन् 1930 से लेकर 1965 तक के किसान जीवन की करुण कथा होने से अंग्रेजों के द्वारा भी किसान पर किये अत्याचार-अन्याय का चित्रण है।

किसानों के पास यह खूबी है कि जानवरों की बोलियोंका अर्थ समझकर और उससे संकेत पाकर अकाल आदि में सावधनता का आचरण करते हैं। जैकिशुन की दादी कौओ की चीख और गीदड़ की बोली से अकाल का अन्दाजा लगाकर शकरकन्दऔर अलुआ की फसल लेने का उपदेश करती है। अनपढ़ता के कारण वे आधुनिक सुख-सुविधा की ओर शंकालु नजर से देखकर उसका उपभोग करने में विरोध करते हैं। लहेरियासराय में खुले अस्पताल की अंग्रेजी दवाका नाम भी नहीं लेते। रुपउली के लोगों को अस्पताल हिन्दुओं को भ्रष्ट करने के खिस्तानी कारखाने लगते है और डॉक्टरी दवाओं के

खिलाफ अफवाहें फैलाते है। अनेक दुर्गुन भी गाँववालों के पास दिखाई देते है। लाचारी और विपन्नता तो भारतीय किसान में सदियों से दिखाई देती है। मछुआरों का प्रतिनिधि खुरखुन पाँच सेर मिठाई खाने के बाद भी दो-दो प्याले चाय पिता है। भोला की गाली सुनकर दाँत निकालकर खीं-खीं हँसता रहता है। न पाँव में जूते न बदन पर कपड़े। मंगल की माँ के बालों में इतनी जूं है कि देखकर मधुरी विस्मय चकित होती है। यह हालाखी गरीबी और शोषण का ही फल है। काँग्रेसी मंत्रीगण जमींदारों के शोषण नीतियोंका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप में समर्थन कर रहे थे। "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ", "रतिनाथ की चाची" आदि उपन्यासों में काँग्रेसियों के उच्चवर्गीय लोगों से अपवित्र गठबन्धन का चित्रण किया है।

निष्कर्षतः हम कहते है कि नागार्जुन की सहानुभूति श्रमजीवी किसान-मजदूर के साथ है। यह वर्ग विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए भी ईमानदार है। शोषण और अत्याचारों को सहन करनेवाला किसानवर्ग अब जागृत होकर यह समझ गया है कि मांगने से कुछ नहीं मिलेगा, उसे संगठित होकर अपनी ताकत से ही अपना हक प्राप्त करना पड़ेगा। किसानों की आजादी आसमान से उतरकर नही आएगी तो वह धरती से ही प्रगट होगी, इसे प्राप्त करने के लिए हुए बिहार के किसान आन्दोलन का सजीव चित्रण उपन्यासों में हुआ है। नागार्जुन ने भारत के पिछले सौं-पचास वर्षों के मजदूर और किसान के निम्नस्तरीय जीवन का इतिहास प्रस्तुत कर उनका सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व किया है।

किसान-मजदूर चेतना :

आजादी के बाद सबसे अधिक परिवर्तन देहात और खेती व्यवस्था में आया है। जमींदारी उन्मूलन कानून, खेती का आधुनिकी करण, औद्योगीकरण, पंचवर्षीय योजनाएँ, भूमि सुधार के बारेमें नए कानून आदि से कृषि अर्थव्यवस्था में हल-चल मच गई। जमींदारी उन्मूलन कानून का किसानों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। क्योंकि कानून ने जमींदारो से केवल मालगुजारी वसूल करने का अधिकार छिन लिया परन्तु लम्बी-चौड़ी जमीनें उनके कब्जे में रही और उसके द्वारा किसान-मजदूर का शोषण जारी रहा। किसान-मजदूरों का आर्थिक शोषण ही वर्ग संघर्ष का कारण है। नागार्जुन के समस्त उपन्यासों में किसान-मज़दूर जागरण एवं संघर्ष व्यापक पैमाने पर चित्रित हुआ है।

"रतिनाथ की चाची" में किसान-जमींदार का संघर्ष जमींदारों द्वारा किसानों को बेदखल करने से निर्माण होता है। असंतुष्ट किसानों का संगठन "किसान कुटी" के नाम से होता है। किसान जमींदारों से मोर्चा लेते है और किसानों का नेता ताराचरण जमींदार से मान्य कर लेता है कि "खेत किसानों की जोत में रहेंगे।" बलचनमा स्वयं शोषित और पीड़ित समाज का होने से वह अपने वर्ग शत्रू को सही रुपमें पहचानता है। उसके जीवन में आए कटु प्रंसगोंने ही उसे क्रान्तिकारी बनाया है। वह

BARR. BAL... LIBRARY SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

कहता है कि, "मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला-गुल्ला और झगड़ा-झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन-बनिहार, कूली-मज़दूर और बहिया खबास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पडेगा।"[67] अतः बलचनमा अपने गांव के किसानों को संगठित कर जमींदारों के शोषण के विरुध्द आवाज उठाता है। वह मानता है कि श्रमजीवी किसान-मज़दूर का कोई जाति-धर्म नहीं होता। उनकी एकता है गरीबी। और उस गरीबी के विरुध्द लड़ाई "किसान भाइयों, माँगने से कुछ नहीं मिलेगा। अपनी ताकत से ही अपना हक पा सकते हैं। अपनी ताकत क्या है? एका है आपकी ताकत, संगठन ---।"[68] और नारे लगाए जाते है - कमाने वाला खायेगा --- इसके चलते जो कुछ हो। इन्किलाब---जिंदाबाद। जमीन किसकी---जोते-बोए उसकी। मतलब किसानों में उदित हुई जमींदार विरोधी चेतना का वाहक प्रतिनिधि पात्र बलचनमा है।

जैसें जमींदारो के अत्याचार बढ़ गये वैसे किसान भी उससे मुक्ति के लिए संगठित और अधिकारों के प्रति जाग्रत हो गए। मलाही-गोंढ़ियारी गाँव का सबसे वृध्द मछुआ गोनड़ दृढतापूर्वक कहता है "यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे नही छोड़ सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिनगी का निचोड़ है।"[69] मछुओं का यह वर्ग संघर्ष मलाही-गोंढ़ियारी में उभरती हुई नयी चेतना का ही परिणाम है। मोहन माँझी के रुप में गाँवों में वर्ग सचेतन नई पीढ़ी उभर रही है जो जाति-पाति को ठुकरानेवाली और साहसी है। मधुरी की गिरफ्तारी तो संघर्ष की चिनगारी है।

किसान चेतना नूतन शिल्प प्रयोग के द्वारा 'बाबा बटेसरनाथ' में साकार हुआ है। पुरानी पोखर की कछ़ार या भिंडपर हल चलानेवाले जमींदार पूत्र फन्नी का विरोध करने वालों में सभी जाति-धर्म के लोग है - खेतिहर हैं, बनिहार हैं, हलवाहे-चरवाहे हैं। हल चलाने के लिए एक हलवाहे ने इन्कार किया तो फन्नी ने उसे "खच्चर" कहा। तो टुनमा हलवाहा कड़ककर बोला "मालिक, गाली मत दीजिए हमको। "हां। हूं।" दूसरे हलवाहे ने अपने साथी का समर्थन किया, स्वर में दृढ़ता थी।"[70] हलवाहे के स्वर में दृढ़ता याने गांव में किसान-मजदूरों की जमींदारो के विरुध्द उठी आवाज का परिणाम है। जीवनाथ और जैकिसुन अदालत में जाने के बजाय जन-बल को संगठित कर अपने अधिकार के लिए लढ़ाई लड़ना आवश्यक समझते है।

नागार्जुन ने किसानों की भाँति ग्रामीण नवयुवकों की चेतना को 'नई पौध' उपन्यास में वाणी दी है। अनमेल विवाह की कुरीति का समाधान नई पीढ़ी के विद्रोह से प्रस्तुत किया है। नौगछिया गाँव के नवयुवकों की टोली जिसे "बम पार्टी" के नाम से जाना जाता है, वह चौदह वर्षीय बिसेसरी का विवाह साठ वर्षीय वृध्द चतुरा चौधरी से होने नहीं देते।

जमींदार-किसान संघर्ष के साथ ही पूँजीपति और मज़दूरों के संघर्ष की भी अभिव्यक्ति नागार्जुन के उपन्यासों में हुई हैं। वामपंथी मज़दूर संगठन के नेतृत्व में चीनी के कारखाने में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। पचास-पचपन पकड़े गए। इन मजदूरों ने जेल में भी असुविधाओं के, अन्याय के खिलाफ हड़ताल कर दी। उनकी मांगे जेलर को मंजूर करनी पड़ी। मजदूरों के इस संगठित ताकत का परिचय 'इमरतिया' उपन्यास में मिलता है। टमका-कोइली गांव को पानी भरनेवाली मजदूरिन ने हड़ताल कर दी है। 'अब वे छः आने माहवारी पर काम नहीं करना चाहती।'[71] पुराने रेट पर मजदूरिन का पानी न भरना यह मजदूर वर्ग की चेतना ही है। माया से यह भी सुना है कि 'पाँच-सात साल पहले देहाती मजदूरों के भाई-बन्दों ने अपनी पंचायत में फैसला किया था कि ऊँची जातवालों के यहाँ अब वे अपमानजनक तरीकों से न कोई काम ही करेंगे, न कुछ इनाम-इकराम ही लेगे। जूठन में चाहे अमृत ही क्यों न रह गया हो, उसे कोई नहीं उठायेगा----।'[72] स्पष्ट है कि नागार्जुन मजदूर संगठन को वर्ग-संघर्ष का आधार बनाकर पूँजीवादी व्यवस्था के स्थानपर वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते है। उनकी इस जनवादी क्रान्ति की सफलता का मंत्र है किसान-मज़दूर की एकता। दोनों एक होकर संघर्ष करते है तो जीत निश्चित ही है। उनके किसान-मजदूर की संयुक्त एकता का प्रतीक झींगुर है।

निष्कर्ष यह है कि वर्ग संघर्ष का मुख्य कारण गरीब किसान और खेतिहर मज़दूरों का आर्थिक शोषण ही है। नागार्जुन के उपन्यासों में मजदूर संघर्ष की अपेक्षा किसान संघर्ष का चित्रण अधिक व्यापक हुआ है। लगता है कि वे कृषि क्रान्ति के द्वारा ही जनवादी क्रान्ति की सफलता देखते है। उन्होंने क्रान्ति की सफलता के लिए यह सूचना भी दी है कि अकेले-अकेले में कुछ नहीं होगा। उसके लिए सोच-विचारकर, इकट्ठा आकर कुछ करना ही लाभदायक होता है। नागार्जुन की यह भी मान्यता है कि वर्ग संघर्ष का नेतृत्व भी शोषित वर्ग से ही पैदा होना चाहिए। सर्वहारा वर्ग का नेता ही जी-जान से नेतृत्व कर सकता है। सर्वहारा वर्ग की पीड़ा-वेदना ओर शोषण को उपन्यासकार ने निकटसे देखने और स्वयं भोगने से उनके उपन्यासों में चित्रित किसान-मजदूर चेतना वास्तववादी भाव भूमि पर सफल हो गयी है।

संदर्भ - सूची :

1. "प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश", सम्पादक - रामचंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, पृ.1238
2. "ए संस्कृत इंग्लिश डिक्सनरी - सर मोनियर विलियम्स सं. 1963 पृ.1153
3. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसेंज -- (खंड 13) प्रधान सम्पादक - ए. आर. ए सैलिगमैन (अनूदित) पृ. 231.
4. सोशालॉजी -- एम् गिन्सबर्ग, ऑक्सफर्ड युनि. प्रेस लंडन सं. 1932, पृ.39
5. सोसायटी -- इटस स्ट्रक्चर ॲण्ड चेंजेस, आर्.एम्. मैकावर, न्यू-यॉर्क सं. 1932, पृ.6
6. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ : डॉ. शीलाप्रभा वर्मा, विद्याविहार प्रकाशन कानपुर, प्र.सं. 1987, पृ. 52
7. समाजशास्त्र : डॉ. विलास संगवे -- पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई प्र.सं. 1966, पृ.249
8. हिन्दी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति : डॉ. म.के. गाडगीळ 1976 पृ.34
9. मराठी विश्वकोश : खण्ड 8 वाँ,सं. तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी 1979 पृ. 7 महाराष्ट्र साहित्य संस्कृति मण्डल, मुंबई।
10. समाज दर्शन की रुपरेखा : (हिन्दी रुपान्तर) डॉ. अजित कुमार सिन्हा सं. 1965, पृ.170
11. इन्डियन मिडल क्लासेस : डॉ. बी.बी. मिश्र प्र.सं. 1961, पृ.2
12. Studies in class structure - G.D. H. Cole Ed. 1955 P.No.4
13. The English Middle class - By Roy Lewis Ed.1956, P.No.15
14. प्रेमचन्द और शरतचंद्र के उपन्यास : मनुष्य का बिम्ब : डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी प्र.स. 1969, पृ.29
15. "पैसा और पूँजी" -- सम्पा. प्रा. रंजन प्र.सं. 1960 पृ. 301
16. आलोचना : मधुरेश : जुलाई; सितम्बर 1972 पृ. 50-51
17. उग्रतारा : नागार्जुन चौथा सं. 1977, पृ. 33
18. वरुण के बेटे : नागार्जुन प्र.सं.(वाणी) 1984. पृ.111
19. कुम्भीपाक : नागार्जुन तृ.सं.1978.पृ.104-105
20. वही : नागार्जुन तृ.सं. 1978, पृ.122
21. बलचनमा : नागार्जुन प्र. सं. 1989, पृ. 6
22. वही : पृ.69
23. वही पृ. 69

24. रतिनाथकी चाची : नागार्जुन प्र.सं. 1985 (वाणी), पृ. 132-33

25. वही पृ.12

26. नई पौध : नागार्जुन सं. यात्री 1980 पृ.10

27. वही पृ. 11

28. वही पृ. 10

29. दुखमोचन : नागार्जुन सं. 1981 पृ. 85

30. पारोः नागार्जुन हिन्दी रुपांतर - कुलानंद मिश्र प्र.सं., 1975 पृ.43

31. नई पौध : नागार्जुन सं. यात्री 1980 पृ.10

32 बलचनमा : नागार्जुन प्र.सं.1989 पृ.59

33. वही पृ.59

34. वही पृ.131

35. वही पृ. 133

36. वरुण के बेटे : नागार्जुन प्र. सं. (वाणी) 1984 पृ. 111

37. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : डॉ. हेमराज निर्मम प्र.सं. 1978 पृ.103

38. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन प्र.सं.1985 (वाणी) पृ. 139

39. बलचनामा : नागार्जुन प्र.सं. 1989 पृ. 133

40. वरुण के बेटे : नागार्जुन प्र.सं. 1984 (वाणी) पृ.50

41. वही पृ. 52-53

42. उग्रतारा:नागार्जुन चौथा सं. 1977 पृ. 87

43. वही पृ.43

44. पारो : नागार्जुन हिन्दी रुपांतर - कुलानंद मिश्र पृ. 82

45. वही पृ.50

46. रनिनाथ की चाची : नागार्जुन प्र.सं.1985 (वाणी) पृ.60-61

47. बलचनमा : नागार्जुन प्र.सं. 1989 पृ. 68

48. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन प्र.सं. 1985 (वाणी) पृ.77

49. दुखमोचन : नागार्जुन सं. 1981 पृ.85

50. उपन्यासकार नागार्जुन : बाबुराम गुप्त प्र.सं.1985 पृ.81

51. कुम्भीपाक : नागार्जुन तृ.सं. 1978 पृ.99

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

52. कुम्भीपाक : नरगरर्जुन तृ.सं. 1978 पृ. 67

53. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन प्र.सं. 1985 (वाणी) पृ.50

54. वही पृ.51

55. बलचनमा : नागार्जुन प्र.सं. 1989 पृ. 45

56. अभिनंदन सं.1993, पृ.47

57. वही पृ. 46

58. जमनिया का बाबा -- नागार्जुन प्र.सं. 1968 पृ. 32

59. बलचनमा : नागार्जुन प्र.सं. 1989, पृ. 7

60. वही पृ. 13

61. वही पृ.17

62. दुखमोचन नागार्जुन सं. 1981 पृ.43

63. बलचनमा : नागार्जुन प्र.सं. 1989, पृ.159

64. वही पृ. 171

65. बाबा बटेसरनाथ नागार्जुन तीसरा सं. 1989 पृ. 54

66. वही पृ.49

67. बलचनमा : नागार्जुन प्र.सं. 1989, पृ. 85

68. ब्लचनमा : नागार्जुन प्र.सं. 1989, पृ. 152

69. वरुण के बेटे : नागार्जुन प्र.सं. 1984 (वाणी) पृ. 33

70. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन तीसरा सं. 1989 पृ. 135

71. दुखमोचन : नागार्जुन सं. 1981 पृ.66

72. वही पृ. 67-68